* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वीरवर अर्जुन

मूल्य १० रुपये

आनन्दघनकी खीझ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

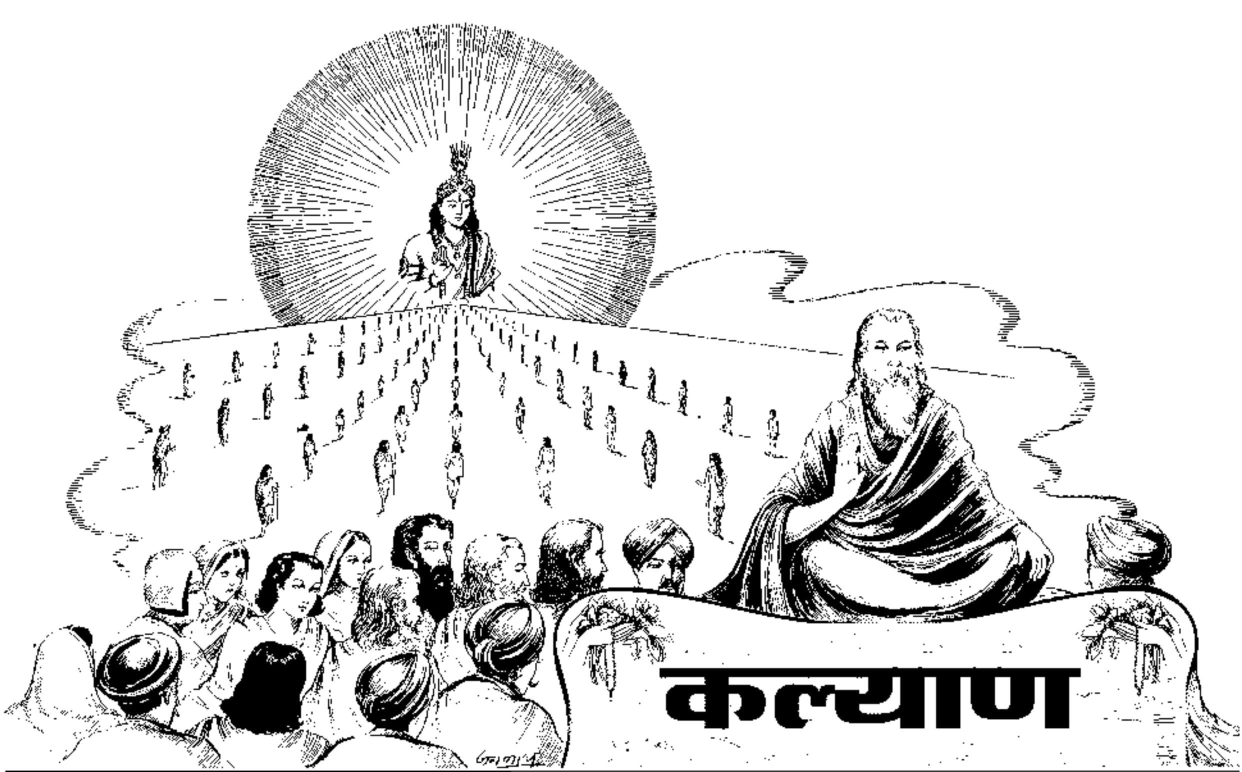

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७ | गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, जुलाई २०२३ ई० | संख्या ७

पूर्ण संख्या ११६०

आनन्दघनकी खीझ

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ?
कहा करौं इहि रिस के मारैं खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता को है तेरौ तात॥
गोरे नंद जसोदा गोरी, तू कत स्यामल गात।
चुटुकी दै-दै ग्वाल नचावत, हँसत, सबै मुसुकात॥
तू मोही कौं मारन सीखी, दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की ये बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई, जनमत ही कौ धूत।
सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

[सूरसागर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, जुलाई २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ७

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- आनन्दघनकी खीझ	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- वीरवर अर्जुन [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- श्रीरामका महत्त्व (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	८
६- शराब आदिके दुष्प्रभावका रहस्य (श्रीकमलकान्तजी तिवारी)	९
७- गुरु-वन्दना (गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)	१०
८- भक्ति-सुधा-सागर-तरंग (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	११
९- कर्तव्यपरायणता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१२
१०- भगवन्नाममें शक्ति [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३
११- संगति-महिमा [**कविता**]	१४
१२- परोपकार-महिमा [**कविता**]	१४
१३- 'मैं भगतन को दास, भगत मेरे मुकुट मणि'	१५
१४- कलिकालमें गुरुकी महिमा	१८
१५- प्रेमके अवतार प्रभु श्रीराम (डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)	१९
१६- 'मोह छाँड़ मन मीत' (श्रीभगवान लालजी शर्मा 'प्रेमी')	२२
१७- आराधनाकी पगडण्डियाँ (श्रीसुरेशजी शर्मा)	२४
१८- मातृपितृ-ऋण चुकानेका सरल मार्ग है श्राद्ध (प्रो० श्रीराधेमोहन प्रसादजी)	२५
१९- सुन्दरकाण्डमें हनुमान्—निष्काम कर्मयोगी (डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी अग्रवाल)	२७
२०- 'जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे···· ?'	३०
२१- यह 'और' 'और'की तृष्णा! (पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	३१
२२- अनिद्रा—नींद न आना [**आरोग्य-चर्चा**] (योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')	३५
२३- गीतामें वर्णित गुणत्रय (साहित्यवाचस्पति श्रीयुत डॉ० श्रीरंजनजी सूरिदेव)	३६
२४- हिमाचलकी चिन्तपूर्णी माता [**तीर्थ-दर्शन**] (प्रो० श्रीमती पूजाजी वशिष्ठ)	३७
२५- बन्धु महान्ति [**सन्त-चरित**]	३९
२६- व्रतोत्सव-पर्व [**श्रावणमासके व्रत-पर्व**]	४१
२७- गोहत्या—महापाप [**गो-चिन्तन**]	४२
२८- सुभाषित-त्रिवेणी	४३
२९- कृपानुभूति	४४
३०- पढ़ो, समझो और करो	४५
३१- मनन करने योग्य	४८
३२- कल्याणका आगामी ९८वें वर्ष (सन् २०२४ ई०)-का विशेषाङ्क '**संक्षिप्त आनन्दरामायणाङ्क**'	५०

चित्र-सूची

१- वीरवर अर्जुन	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- आनन्दघनकी खीझ	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- वीरवर अर्जुन	(इकरंगा)	७
४- नारदजी और ब्रह्माजीका संवाद	(,,)	१३
५- हिमाचलकी चिन्तपूर्णी माता	(इकरंगा)	३७
६- भीष्म-युधिष्ठिर-संवाद	(,,)	४८
७- मृत ब्राह्मण बालक तथा गीध एवं गीदड़पर भगवान् शंकरकी कृपा	(,,)	४९

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क —**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।
'कल्याण' के मासिक अङ्क www.gitapress.org के **E-Books Option** पर नि:शुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

हमारा मानव-शरीर पंचकोषोंसे बना हुआ है—ऐसा सभी शास्त्र और सन्त-महात्माओंका कथन है। ये कोष हैं—अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष एवं आनन्दमय कोष।

हमारा स्थूल शरीर अन्नमय कोषसे बना हुआ है और इसे संचालित करनेवाले प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदिके विभिन्न सूक्ष्म कोष हैं।

सामान्यतया हम सभी अपने शरीर-स्वास्थ्यकी चिन्ताओंके रूपमें अन्नमय कोषसे ही प्रधानरूपसे जुड़े रहते हैं। सिद्ध महात्माओंने अपने तपःपूर्ण जीवनमें अनुभवके आधारपर इन पंचकोषोंके पार जाने और स्वयंको पहचाननेकी विधियाँ साधकोंके कल्याणहेतु बतायी हैं।

अन्नमय कोषका अतिक्रमण करनेमें ध्वनि (नाद)-का विशेष महत्त्व है। व्यावहारिक रूपसे हमें कम बोलना, अनावश्यक वाद-विवादसे बचना और अधिक-से-अधिक भगवन्नामका आश्रय लेनेका प्रयत्न करना चाहिये।

भगवन्नाम सर्वविधि कल्याणकारी है—यह निर्विवाद सत्य है और साधकोंका परम आश्रय भी।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण हरे हरे॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥ हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—तुम जो संसारके अनित्य प्राणिपदार्थोंमें सुख समझकर उनकी चाह करते हो और उस चाहकी पूर्तिके लिये भगवान्‌को भूलकर भाँति-भाँतिके दुराचार, अनाचार करके सदा-सर्वदा दुःख-दर्दभरी भवाटवीमें भटकते हो, यह तुम बहुत बड़ी भूल करते हो। इसमें सुख तो कभी मिलेगा नहीं, नये-नये दुःखके कारण बनते रहेंगे और नयी-नयी योनियोंमें नये-नये दुःख मिलते रहेंगे। अतएव इसकी चाहको जला दो।

याद रखो—भोगोंकी कामना करके पापसे बचना बहुत ही कठिन है। यदि तुम कहीं पापोंसे बच भी गये तो भी तुम्हारा बन्धन नहीं कटेगा। बेड़ी सोनेकी हो या लोहेकी—है तो बेड़ी ही। तुम सदा संसारके—जन्म-मृत्युके बन्धनमें ही रहोगे।

याद रखो—यहाँ तुम्हारे लिये जो कुछ होता है, सब तुम्हारे पूर्वकर्मोंके परिणामस्वरूप दयामय मंगलमय प्रभुके विधानानुसार तुम्हारे मंगलके लिये ही होता है। अतः जो होता है उसे होने दो और उसमें प्रभुकी कृपाका अनुभव करके यही समझो कि प्रभुके मंगलमय विधानसे जो कुछ तुम्हें प्राप्त हो रहा है, उससे तुम्हारे कर्मका ऋण तो चुक ही रहा है। मंगलमय प्रभुके मंगलमय हाथोंसे यह विधान बना है, इसलिये इससे तुम्हारा निश्चय मंगल ही होगा। तुम्हें परम लाभ होगा, यों मानकर प्रत्येक विधानमें सुखका अनुभव करो।

याद रखो—प्रभुके मंगलमय विधानमें 'अपना परम लाभ' होता है, यह सर्वथा सत्य है और इस सत्यपर विश्वास करके नित्य सुखी रहना भी परम सौभाग्य तथा भगवद्विश्वासका सूचक होनेसे परम मंगलमय है, तथापि यदि प्रेमकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह मान्यता भी उच्च श्रेणीकी नहीं है; क्योंकि 'परम लाभ' होनेकी सम्भावना ही इसमें सुखका कारण है। 'भगवान् मंगलमय हैं, वे अमंगल कर नहीं सकते, वे जो कुछ भी अत्यन्त कठोर और महान् मृदु विधान करेंगे, उसमें हमारा परम लाभ होगा। (और हमें लाभ ही चाहिये) इसलिये यह बड़े सुखका विषय है।' इस मान्यतामें भगवत्प्रेमकी प्रधानता नहीं है, 'परम लाभ'की प्रधानता है। इसलिये यह प्रेमकी अपेक्षा नीचा भाव है।

याद रखो—प्रेममें लाभ-हानिकी स्मृति नहीं है, वहाँ तो नित्य-निरन्तर परम प्रियतम प्रेमास्पद प्रभुके सुखकी चिन्ता है। 'उनके मनका जो कुछ होता है, उसीमें उन्हें सुख होता है; अतएव प्रतिक्षण प्रेमीको यही चिन्ता रहती है कि सब कुछ उनके 'मनका' होता रहे। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी लाभकी कोई कल्पना नहीं, हानिकी कोई चिन्ता नहीं; इसलिये वह सुखकी चाह नहीं करता, दुःखकी परवा नहीं करता। वह सदा-सर्वदा इसीको परम लाभ मानता है कि उसका जो कुछ जीवन है, वह केवल प्रेमास्पद परम प्रियतम प्रभुके मनका जीवन है। उसका न अपना मन है, न जीवन है, न जीवनका कोई कार्य है और न कुछ चाहना-पाना या त्याग करना ही है। प्रभुका सुख ही परम सुख है—परम लाभ है।'

याद रखो—तुम जहाँ भी कुछ अपना अलग लाभ मानते हो और उसकी प्राप्ति करना चाहते हो तथा प्राप्ति होनेकी आशामें सुख मानते हो, वह चाहे होती हो भगवान्‌के विधानसे ही (और यह सत्य है कि भगवान्‌के विधानसे ही होती है) तो तुम्हारे मनमें छिपा काम है, जो प्रेमका कलंक है और ऐसी दशामें प्रेमका यथार्थ उदय नहीं होता। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

वीरवर अर्जुन

इन्द्रके अंशसे उत्पन्न महावीर अर्जुन वीरता, स्फूर्ति, तेज एवं शस्त्र-संचालनमें अप्रतिम थे। पृथ्वीका भार हरण करने तथा अत्याचारियोंको दण्ड देनेके लिये साक्षात् भगवान् नर-नारायणने ही श्रीकृष्ण और अर्जुनके रूपमें अवतार लिया था। यद्यपि समस्त पाण्डव श्रीकृष्णके भक्त थे, किंतु अर्जुन तो भगवान् श्यामसुन्दरके अभिन्न सखा तथा उनके प्राण ही थे।

वीरवर अर्जुनने अकेले ही द्रुपदको परास्त करके तथा उन्हें लाकर गुरु द्रोणाचार्यके चरणोंमें डाल दिया। इस प्रकार गुरुके इच्छानुसार गुरुदक्षिणा चुकाकर इन्होंने संसारको अपने अद्भुत युद्ध-कौशलका प्रथम परिचय दिया। अपने तप और पराक्रमसे इन्होंने भगवान् शंकरको प्रसन्न करके पाशुपतास्त्र प्राप्त किया। दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर इन्हें अपने-अपने दिव्यास्त्र दिये। देवराजके बुलानेपर ये स्वर्ग गये तथा अनेक देव-विरोधी शत्रुओंका दमन किया। स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीके प्रस्तावको ठुकराकर इन्होंने अद्भुत इन्द्रियसंयमका परिचय दिया। अन्तमें उर्वशीने रुष्ट होकर इनको एक वर्षतक नपुंसक रहनेका शाप दिया।

महाभारतके युद्धमें रण-निमन्त्रणके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णने दुर्योधनसे कहा कि 'एक ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी तथा दूसरी ओर मैं नि:शस्त्र होकर स्वयं रहूँगा। भले ही आप पहले आये हैं, किंतु मैंने अर्जुनको पहले देखा है। वैसे भी आपसे आयुमें ये छोटे हैं। अत: इन्हें माँगनेका अवसर पहले मिलना चाहिये।' भगवान्के इस कथनपर अर्जुनने कहा—'प्रभो! मैं तो केवल आपको चाहता हूँ। आपको छोड़कर मुझे तीनों लोकोंका राज्य भी नहीं चाहिये। आप शस्त्र लें या न लें, पाण्डवोंके एकमात्र आश्रय तो आप ही हैं।' अर्जुनकी इसी भक्ति और निर्भरताने भगवान् श्रीकृष्णको उनका सारथि बननेपर विवश कर दिया। यही कारण है कि तत्त्ववेत्ता ऋषियोंको छोड़कर श्रीकृष्णने केवल अर्जुनको ही गीताके महान् ज्ञानका उपदेश दिया। महाभारतके युद्धमें दयामय श्रीकृष्ण माताकी भाँति इनकी सुरक्षा करते रहे।

महाभारतके युद्धमें छ: महारथियोंने मिलकर अन्यायपूर्वक अभिमन्युका वध कर डाला। अभिमन्युकी मृत्युका मुख्य कारण जयद्रथको जानकर दूसरे दिन सूर्यास्तके पूर्व अर्जुनने उसका वध करनेका प्रण किया। वध न कर पानेपर स्वयं अग्निमें आत्मदाह करनेकी उन्होंने दूसरी प्रतिज्ञा भी की। भक्तके प्रणकी रक्षाका दायित्व तो स्वयं भगवान्का है। दूसरे दिन घोर संग्राम हुआ। श्रीकृष्णको अर्जुनके प्रणरक्षाकी व्यवस्था करनी पड़ी। सायंकाल श्रीहरिने सूर्यको ढककर अन्धकार कर दिया। सूर्यास्त हुआ जानकर अर्जुन चितामें बैठनेके लिये तैयार हो गये। अन्तमें जयद्रथ भी अपने सहयोगियोंके साथ अर्जुनको चिढ़ानेके लिये आ गया। अचानक श्रीकृष्णने अन्धकार दूर कर दिया। सूर्य पश्चिम दिशामें चमक उठा। भगवान्ने कहा—'अर्जुन! अब शीघ्रता करो! दुराचारी जयद्रथका सिर काट लो, किंतु ध्यान रहे, वह जमीनपर न गिरने पाये; क्योंकि इसके पिताने भगवान् शिवसे वरदान माँगा है कि जयद्रथके सिरको जमीनपर गिरानेवालेके सिरके सौ टुकड़े हो जायँगे।' अर्जुनने बाणके द्वारा जयद्रथका मस्तक काटकर उसे सन्ध्योपासन करते हुए उसके पिताकी ही अँजलीमें गिरा दिया। फलत: पिता-पुत्र दोनों ही मृत्युको प्राप्त हुए। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे अनेक विपत्तियोंसे पाण्डवोंकी रक्षा हुई और अन्तमें युद्धमें उन्हें विजय मिली। वस्तुत: अर्जुन और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं। जहाँ धर्म है, वहाँ श्रीकृष्ण हैं और जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं विजय है।

श्रीरामका महत्त्व

[वाल्मीकीय रामायणके आधारपर]

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीरामचन्द्रजी साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा भगवान् विष्णुके अवतार थे, यह बात वाल्मीकीय रामायणमें जगह-जगह कही गयी है। जब संसारमें रावणका उपद्रव बहुत बढ़ गया, देवता और ऋषिगण बहुत दुखी हो गये, तब उन्होंने जाकर ब्रह्मासे प्रार्थना की। पितामह ब्रह्मा देवताओंको धीरज बँधा रहे थे, उसी समय भगवान् विष्णुके प्रकट होनेका वर्णन इस प्रकार आता है—

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः॥

(१।१५।१६-१७)

'उसी समय महान् तेजस्वी जगत्पति भगवान् विष्णु मेघपर चढ़े हुए सूर्यके समान गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर पीताम्बर और हाथोंमें शंख, चक्र और गदा आदि आयुध एवं चमकीले स्वर्णके बाजूबंद शोभा पा रहे थे। सभी देवताओंने उनको प्रणाम किया।'

इसके बाद देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान्ने राजा दशरथके घर मनुष्यरूपमें अवतार लेना स्वीकार किया। फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

श्रीरामचन्द्रजीका विवाह होनेके बाद जब वे अयोध्याको लौट रहे थे, उस समय रास्तेमें परशुरामजी मिले। श्रीराम विष्णुके अवतार हैं या नहीं—इसकी परीक्षा करनेके लिये उन्होंने श्रीरामसे भगवान् विष्णुके धनुषपर बाण चढ़ानेके लिये कहा; तब श्रीरामचन्द्रजीने तुरंत ही उनके हाथसे दिव्य धनुष लेकर उसपर बाण चढ़ा दिया और कहा 'यह दिव्य वैष्णव बाण है। इसे कहाँ छोड़ा जाय?' यह देख-सुनकर परशुरामजी चकित हो गये। उनका तेज श्रीराममें जा मिला। उस समय श्रीरामकी स्तुति करते हुए परशुरामजी कहते हैं—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप॥

(१।७६।१७)

'आपका कल्याण हो। इस धनुषके चढ़ानेसे मैं जान गया कि आप मधु-दैत्यको मारनेवाले, देवताओंके स्वामी, साक्षात् अविनाशी विष्णु हैं।' इस प्रकार श्रीरामके प्रभावका वर्णन करके और उनकी प्रदक्षिणा करके परशुरामजी चले गये।

रावणका वध हो जानेके बाद जब ब्रह्मासहित देवता लोग श्रीरामचन्द्रजीके पास आये और उनसे बातचीत करते हुए श्रीरामने यह कहा कि 'मैं तो अपनेको दशरथजीका पुत्र राम नामका मनुष्य ही समझता हूँ। मैं जो हूँ, जहाँसे आया हूँ, वह आपलोग ही बतायें।' इसपर ब्रह्माजीने सबके सामने सम्पूर्ण रहस्य खोल दिया। वहाँ रामके महत्त्वका वर्णन करते हुए ब्रह्माजी कहते हैं—

भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥

(६।११७।१४-१६)

'आप साक्षात् चक्रपाणि लक्ष्मीपति प्रभु श्रीनारायणदेव हैं। आप ही भूत-भविष्यके शत्रुओंको जीतनेवाले और एकशृंगधारी वराह-भगवान् हैं। आप आदि, मध्य और अन्तमें सत्यरूपसे परिपूर्ण अविनाशी ब्रह्म हैं। आप सम्पूर्ण लोकोंके परमधर्म चतुर्भुज विष्णु हैं। आप ही अजित, पुरुष, पुरुषोत्तम, हृषीकेश तथा खड्ग और शार्ङ्ग धनुषधारी विष्णु हैं और आप ही महाबलवान् कृष्ण भी हैं।'

इसी तरह और भी बहुत कुछ कहा है। वहीं राजा दशरथ भी लक्ष्मणके साथ बातचीत करते समय श्रीरामकी सेवाका महत्त्व बतलाकर कहते हैं—

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मसंमितम्।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परंतपः॥
अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया।
एनं शुश्रूषताव्यग्रं वैदेह्या सह सीतया॥
(६।११९।३१-३२)

'सौम्य! परन्तप राम साक्षात् अविनाशी अव्यक्त ब्रह्म हैं। इनका प्रभाव वेदमें वर्णित है। ये देवोंके हृदय और परम रहस्यमय हैं। जनकनन्दिनी सीताके सहित इनकी सेवा करके तुमने पवित्र धर्मका आचरण और बड़े भारी यशका लाभ किया है।'

इसके सिवा और भी अनेक बार ब्रह्माजी, देवता और महर्षियोंने श्रीरामके अमित प्रभावका यथासाध्य वर्णन किया है। मनुष्य-लीला समाप्त करके परमधाममें पधारनेके प्रसंगमें भी यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमेश्वर थे। अतः वाल्मीकीय रामायणको प्रामाणिक ग्रन्थ माननेवाला कोई भी मनुष्य श्रीरामके ईश्वर होनेमें शंका कर सके, ऐसी गुंजाइश नहीं है।

शराब आदिके दुष्प्रभावका रहस्य

(श्रीकमलकान्तजी तिवारी)

भोजनके थोड़ेसे फर्कसे बुद्धि क्षीण हो जाती है या प्रगाढ़ हो जाती है; क्योंकि बुद्धिके लिये भोजनके कुछ अनिवार्य तत्त्व हैं, जो बुद्धितक पहुँचने चाहिये''''अगर वे नहीं पहुँचे तो बुद्धि क्षीण हो जाती है। बुद्धिकी क्षमता भी होगी तो भी बुद्धि प्रकट नहीं हो पायेगी; क्योंकि प्रकट होनेके लिये अन्नमय कोषकी सहायता चाहिये, वह नहीं मिल रही। बहुत छोटा-सा तत्त्व आदमीके तृतीय नेत्र अर्थात् 'पिनीयल ग्लैण्ड'में पैदा होता है अगर वह न पैदा हो तो बुद्धि एकदम क्षीण हो जाती है। जब एक आदमी शराब पीता है तो बुद्धितक उसका कोई प्रभाव नहीं जाता, वस्तुतः चेतनातक शराब नहीं जाती, लेकिन 'पिनीयल ग्लैंड'में जो रस पैदा होते हैं, वे पैदा नहीं होते, पैदा होने बन्द हो जाते हैं, बस बुद्धि खो जाती है; क्योंकि अन्नमय कोषमें जो हिस्सा है, उससे बुद्धिका सम्बन्ध है, वह हिस्सा सो जाता है।

यह एक पागलपन सारी दुनियामें फैल रहा है—ऐसे रसायनोंके खानपानकी चीजोंमें इस्तेमाल, जिनका सीधा असर 'पिनीयल ग्लैंड'में बननेवाले तत्त्व (रसायन)-पर हो रहा है, वास्तवमें मनुष्य विवेकहीन हो रहा है, उसका वास्तविक विकास अवरुद्ध हो रहा है। सारी सभ्यता जिस बुद्धिके आधारपर खड़ी है, उस बुद्धिको नुकसान पहुँचाना अनिवार्य चलन-जैसा हो रहा है।

बुद्धिके गिर जानेसे आदमी एक तरहसे बन्धनमुक्त हो रहा है; क्योंकि विवेकका भी अपना एक बन्धन है और विवेककी एक मर्यादा है, उससे मुक्त हो जाता है। उस मर्यादासे मुक्तिको अगर किसीने स्वतन्त्रता समझा तो बड़ी भूल है; क्योंकि स्वतन्त्रता दो तरहसे फलित होती है, मर्यादाके पार जानेसे भी फलित, मर्यादाके नीचे गिरनेसे भी फलित होती है। मर्यादाके नीचे गिरकर जो स्वतन्त्रता है, वह सिर्फ पागलपन है, मर्यादाके ऊपर उठकर जो स्वतन्त्रता है, वही वास्तविक स्वतन्त्रता है अथवा परम अवस्था है।

बहुत सस्ता आनन्द खरीदा जा रहा है केमिकल्ससे। पर वह भी रासायनिक तत्त्व—भोजन है। इस अस्थायी आनन्दके कारण आदमी पशु होता जा रहा है। प्रत्येक आदमीके शरीरमें कोई सात करोड़ कोष हैं, एक-एक कोष शराब पीने लगता है, क्योंकि एक-एक कोष आनन्दकी खोजमें है। हम प्रत्येक कोषको अस्थायी आनन्दका गुलाम बना रहे हैं।

बहुत महत्त्वपूर्ण है कि आप क्या भोजन ले रहे हैं, वह इन सात करोड़ कोषोंको निर्मित कर रहा है, फिर आपको इनका गुलाम बनकर जीना पड़ता है, यह गुलामी वास्तविक आनन्दकी खोजमें बाधक है। ऐसा भोजन शरीरको दें जो शरीरको ऊर्जा दे, नशा न दे, शरीरकी माँगकी पूर्ति करे, लेकिन शरीरमें पागलपन पैदा न करे।

गुरु-वन्दना

(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

[परमेश्वर ही साक्षात् सद्गुरु हैं। वे ही सच्चे जिज्ञासुके मार्गदर्शक बनकर विभिन्न रूपसे उपस्थित होते हैं। भगवान् दत्तात्रेयके चौबीस गुरु इसी सार्वभौम सत्ताका संकेत और जिज्ञासुकी ग्राहिका शक्तिकी व्याख्या करते हैं—सम्पादक *]*

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

गुरुदेव! तुम्हारे पादपद्मोंमें कोटि-कोटि प्रणाम है। अन्तर्यामिन्! तुम्हारे अनन्त गुणोंका बखान यदि शेषनाग अपने सहस्र मुखोंसे सृष्टिके अन्ततक अहर्निश करते रहें तो भी उनका अन्त नहीं होगा। तब फिर मैं क्षुद्र प्राणी तुम्हारी विमल विरदावलीका बखान भला किस प्रकार कर सकता हूँ, फिर भी तुम जाने जाते हो। तुम अगम्य हो, तो भी अधिकारी तुमतक पहुँचते हैं। तुम अनिर्वचनीय हो, तो भी शिष्य-प्रशिष्य परस्परमें मिलकर तुम्हारा निर्वचन करते हैं। तुम निर्गुण-निराकार हो, फिर भी शिष्योंके प्रेमवश तुम सगुण-साकार होकर प्रकट होते हो। मनीषी तुम्हारे तत्त्वको परोक्ष बतलाते हैं, तो भी तुम प्रत्यक्ष होकर शिष्योंकी पूजा-अर्चाको ग्रहण करते हो। हे गुरुदेव! इस प्रकारके तुम्हारे रूपको बारम्बार नमस्कार है।

हे ज्ञानावतार! मेरी पात्रता-अपात्रताका विचार न करना। पारस लोहेकी पात्रताकी ओर ध्यान नहीं देता, वह तो सामने आये हुए हर प्रकारके लोहेको सुवर्ण कर देता है, क्योंकि उसका स्वभाव ही लोहेको कांचन बनाना है। तुम्हारे योग्य पात्रता क्या इन पार्थिव प्राणियोंमें कभी आ सकती है? अपने स्वभावका ही ध्यान रखना। तुम्हारे दयालु स्वभावकी प्रशंसा सुनकर ही मैं समिधा हाथमें लिये हुए तुम्हारे श्रीचरणोंमें आया हूँ। ये वन्य पुष्प हैं, अभीकी लायी हुई ये कुशा हैं और ये सूखी समिधा हैं, यही मेरे पास उपहार है और सम्भवतया यही तुम्हें प्रिय भी होगा। हे निरपेक्ष! मेरी प्रार्थना स्वीकार करो और मुझे अपने चरणोंमें शरण दो। तुम्हारे पादपद्मोंमें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है।

हे त्रिगुणातीत! मैं तुम्हारी दयाका भिखारी हूँ, हम नेत्रहीनोंको एकमात्र तुम्हारा ही आश्रय है। अज्ञानतिमिरने हमारी ज्योतिको नष्ट कर दिया है? इसे अपनी कृपारूपी शलाकासे उन्मीलित कर दो, जिससे हम तुम्हारी छविका दर्शन कर सकें। हे मेरे उपास्य देव! तुम्हें छोड़कर संसारमें मेरा और कौन ऐसा हितैषी है? तुम्हीं एकमात्र मेरे आधार हो। हे अनाश्रितके आश्रय! मेरी इस बद्धांजलिको स्वीकार करो।

'न तो मैं तैरना ही जानता हूँ, न नाव खेना ही। फिर भी घोर समुद्रमें बहा चला जा रहा हूँ, किधर जा रहा हूँ, कुछ पता नहीं। बवण्डर सामनेसे आता हुआ दीख रहा है, उससे कैसे बच सकूँगा, कुछ पता नहीं। अब एकमात्र तुम्हारा ही आश्रय है। कर्णधार बनकर मेरी सहायता करोगे तभी काम चल सकेगा। तुम्हारे पधारनेके अतिरिक्त नि:सृतिका दूसरा मार्ग ही नहीं। चारों ओरसे फूटी हुई इस जीर्ण तरणीपर जब तुम्हारे श्रीचरण पड़ेंगे तो यह सजीव होकर निर्दिष्ट-पथकी ओर आप-से-आप ही चल पड़ेगी। हे घोर संसाररूपी समुद्रके एकमात्र कर्णधार! इस शुष्कजीवनमें सरसता लानेवाले गुरुदेव! हम प्रणतोंकी ओर दृष्टिपात कीजिये।

तुम्हारी जगन्मोहन मूर्तिका ध्यान करते-करते दिन व्यतीत हो जाता है, रात्रि आ जाती है, फिर भी मैं तुम्हारी कृपासे वंचित ही बना रहता हूँ। तुम्हारे निकट रहते हुए भी 'तुम्हारा' नहीं बन पाता। तुम्हारी चरण-छायाके सन्निकट बना रहनेपर भी शीतलतासे वंचित रहता हूँ। किसे दोष दूँ, मेरा दुर्दैव ही मुझे तुमतक नहीं पहुँचने देता। बस, इस जीवनमें एक ही आशा है, उसीका ध्यान करता रहता हूँ—

वह दिन कैसा होयगा, जब गुरु गहैंगे बाँह।
अपना करि बैठायँगे चरण-कमलकी छाँह॥

भक्ति-सुधा-सागर-तरंग

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

१-गीतामें आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी—ये चार प्रकारके पुण्यात्मा और उदार भक्त बतलाये गये हैं, इनमेंसे पहले तीन गौण और चौथा मुख्य भगवान्‌का आत्मा ही है (गीता ७। १६-१७; नारद-सूत्र ५६-५७)।

२-रोग-शोक-भयसे पीड़ित होकर उससे छूटनेकी इच्छासे जो पुरुष भक्ति करता है, वह आर्त भक्त है, जैसे गजराज, द्रौपदी आदि।

३-इस लोक या परलोकके किसी भोगके लिये जो भक्ति करता है, वह अर्थार्थी भक्त है, जैसे ध्रुव, विभीषण आदि।

४-ये दोनों प्रकारकी भक्ति राजसीके अन्तर्गत आ जाती हैं। वास्तवमें भगवान्‌की भक्तिमें किसी प्रकारकी कामना नहीं करनी चाहिये (नारद-सूत्र ७)। पर किसी तरहसे भी की हुई भगवान्‌की भक्ति अन्तमें साधकके हृदयमें प्रेम पैदा करके उसका परम कल्याण कर देती है (गीता ७। २३)। ध्रुव, विभीषण, गजराज, द्रौपदी आदिके उदाहरण प्रत्यक्ष हैं।

५-विषयोंकी कामना भगवान्‌का यथार्थ महत्त्व न जाननेके कारणसे ही होती है, इससे जो पुरुष भगवान्‌के रहस्यको यथार्थरूपसे जाननेके लिये भक्ति करता है, वह जिज्ञासु कहलाता है। उसे अन्य कोई कामना नहीं रहती, इसीलिये वह पूर्वोक्त दोनोंसे उत्तम माना गया है। वास्तवमें स्वरूप जाने बिना भक्ति किसकी और कैसे हो?

६-भगवान्‌को यथार्थ जानकर जो अभेदभावसे निष्काम और अनन्यचित्त होकर भक्ति करता है, वह ज्ञानी भक्त है। ऐसे तन्मय एकान्त भक्तको ही श्रीनारदने '**मुख्य**' बतलाया है (नारद-सूत्र ६७, ७०)। वास्तवमें जो अपनेमें भगवान्‌की भावना करके सब प्राणियोंमें अपनेको और भगवत्स्वरूप आत्मामें सबको देखता है, वही श्रेष्ठ भागवत है (भागवत १२। २। ४५)। परंतु इस प्रकारके सर्वत्र वासुदेवको देखनेवाले भक्त जगत्‌में अत्यन्त दुर्लभ हैं (गीता ७। १९)।

७-भगवान्‌के सम्यक् ज्ञान बिना भजनका परम आनन्द स्थायी और एक-सा नहीं होता। भजनकी एकतानतामें श्रीनारदजीने गोपियोंका दृष्टान्त देकर (नारद-सूत्र २१) यह बतलाया है कि गोपियोंकी भक्ति अन्धी नहीं थी, वे भगवान्‌को यथार्थ रूपसे जानती थीं (नारद-सूत्र २२, भागवत १०। २९। ३२; १०। ३१। ४)। गोपियोंकी परमोच्च भक्तिमें व्यभिचार देखनेवालोंकी आँखें और बुद्धि दूषित हैं।

८-ज्ञानी भक्त भगवान्‌को आत्मवत् प्रिय होते हैं (गीता ७। १८), यह नहीं समझना चाहिये कि आत्माराम ज्ञानी पुरुष नित्य बोधरूपमें अभिन्न स्थित होनेके कारण भक्ति नहीं करते, सच्ची अहैतुकी भक्ति तो वे ही करते हैं। भगवान्‌के गुण ही ऐसे विलक्षण हैं कि शुकदेव-सरीखे आत्माराम मुनियोंको भी उनकी अहैतुकी भक्ति करनी पड़ती है (भागवत)।

९-भगवान् ही सब भूतोंके भीतर-बाहर और सर्वभूतरूपसे स्थित हैं (गीता १३। १५), यह जानकर भक्तगण उस सर्वव्यापी भगवान्‌के गुण सुनते ही सब प्रकारकी फलाकांक्षासे रहित होकर गंगाका जल जैसे स्वाभाविक ही बहकर समुद्रके जलमें अभिन्नभावसे मिल जाता है, वैसे ही अपनी कर्मगतिको अविच्छिन्नभावसे भगवान्‌में समर्पण कर देते हैं, इसीका नाम निर्गुण या निष्काम भक्ति है। इसीको अहैतुकी भक्ति कहते हैं। (भागवत ३। २९। ११-१२)।

१०-ऐसे अहैतुक भक्त आप्तकाम, पूर्णकाम और अकाम होनेके कारण भगवत्सेवाके स्वाभाविक आचरणको छोड़कर अन्य किसी भी वस्तुकी इच्छा नहीं करते। संसारके भोग और स्वर्गसुखकी तो गिनती ही क्या है, वे मुक्ति भी नहीं ग्रहण करते ***'मुक्ति निरादर भगति लुभाने'*** भगवान् स्वयं उन्हें सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—यह पाँच प्रकारकी मुक्ति देना चाहते हैं, पर वे नहीं लेते, यही आत्यन्तिक एकान्तभक्ति है (भागवत ३। २९। १३-१४)।

कर्तव्यपरायणता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

❁ वैराग्य होनेपर तो सब प्रकारके धर्म और कर्तव्यकी समाप्ति हो जाती है। ऐसे ही आत्मरति और प्रेमकी प्राप्ति होनेपर भी कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता।

❁ दुखीका कर्तव्य है त्याग और सुखीका कर्तव्य है सेवा।

❁ चाहरहित होनेसे कर्तव्यपरायणताकी शक्ति स्वत: आ जाती है।

❁ दूसरोंके अधिकारकी रक्षा और अपने अधिकारका त्याग ही वास्तवमें कर्तव्य है।

❁ वास्तविक कर्तव्य वही है, जिससे किसीका अहित न हो और कर्तव्यपालन करनेपर कर्ता अपने लक्ष्यसे अभिन्न हो जाय।

❁ जो नहीं कर सकते उसके, और जो नहीं करना चाहिये उसके न करनेसे जो करना चाहिये, वह स्वत: होने लगता है। इस दृष्टिसे कर्तव्यपरायणता सहज तथा स्वाभाविक है।

❁ जो सब ओरसे विमुख होकर अपनेमें ही 'अपने' को पा लेता है, उसे कुछ भी करना शेष नहीं रहता।

❁ जो प्रवृत्ति परहितमें हेतु नहीं है, वह कर्तव्य नहीं है।

❁ कर्तव्यपरायणता वह विज्ञान है, जिससे मानव जगत्के लिए उपयोगी होता है और स्वयं योग-विज्ञानका अधिकारी हो जाता है।

❁ अपने कर्तव्यपालनसे दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करना ही वास्तवमें अधिकार है, जिससे चित्त शुद्ध हो जाता है।

❁ आदर उसीको मिलता है, जो कर्तव्यपरायण एवं संयमी होता है। इसलिये साधकको कर्तव्यपरायण होना चाहिए अर्थात् करनेयोग्य कामको कुशलतापूर्वक पूरा कर देना चाहिये। उसके करनेमें न तो किसी प्रकारका प्रमाद करना चाहिये और न आलस्य करना चाहिये।

❁ साधकको यह भी अभिमान नहीं होना चाहिये कि मैं कर्तव्यपरायण हूँ या मैं संयमी हूँ; क्योंकि गुणका अभिमान होनेसे वह गुण दोषके रूपमें बदल जाता है।

❁ सुखभोगका लालच मनुष्यको अपना कर्तव्यपालन नहीं करने देता। इसलिये साधकको चाहिये कि सुखभोगके लालचका त्याग करे और प्रतिकूलतासे भयभीत न हो, प्रत्युत भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे जो विवेक प्राप्त हुआ है, उसका आदर करके प्रतिकूल परिस्थितिको भी भगवान्‌की कृपा मानकर प्रसन्न रहे।

❁ अपने अधिकारका त्याग करके अपने कर्तव्य-पालनद्वारा भगवान्‌के नाते दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करना और उनके प्रति हितकारी भावनासे उनको सुख पहुँचाना—यही साधकका पुरुषार्थ है।

❁ जो साधक अपने स्वभाव और परिस्थितिके अनुरूप कर्तव्यरूपसे प्राप्त कर्मको बिना किसी प्रकारके फलकी चाहके ठीक-ठीक पूरा कर देता है, जिस प्रकार उसे करना चाहिये, ठीक वैसे ही करता है, आलस्य या प्रमादवश उसमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं करता; जितने भी आवश्यक कर्म हैं, सबको जो यथावश्यक समयपर भलीभाँति कुशलता और उत्साहपूर्वक पूरा कर देता है, उस कर्तव्यपालनसे उसकी क्रियाशक्तिका वेग और कर्म करनेकी आसक्ति मिटती जाती है। चित्त शुद्ध हो जाता है। भोग-वासना नष्ट हो जाती है। किसी प्रकारकी चाह न रहनेसे चित्त निर्विकल्प हो जाता है। फिर योगसे सामर्थ्य, विवेकसे बोध और वैराग्यसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होकर उसका परलोक भी सब प्रकारसे सुधर जाता है।

❁ विचार करना चाहिये कि कर्म करनेका विधान किसलिये है? विचार करनेपर मालूम होगा कि मनुष्यमें जो क्रियाशक्तिका वेग है, उसकी जो करनेमें आसक्ति है, उसे मिटानेके लिये ही कर्मोंका विधान है। अत: अपने स्वभाव और परिस्थितिके अनुसार जो कर्म कर्तव्यरूपसे प्राप्त हुआ है, उसे खूब सावधानीके साथ उत्साहपूर्वक सांगोपांग पूरा कर दे।

❁ जो यह समझता है कि यदि मुझे कर्मसे कुछ लेना ही नहीं है तो मैं कर्म क्यों करूँ, वह भी कर्मको ठीक-ठीक नहीं कर सकता। आलसी बन जाता है। जो फलके लालचसे कर्म करता है, उसका लक्ष्य भी कर्मकी सुन्दरतापर नहीं रहता। अत: वह भी करनेयोग्य कर्मको ठीक-ठीक पूरा नहीं कर सकता।

साधकोंके प्रति—

भगवन्नाममें शक्ति

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ । कलि बिसेषि नहिं आन उपाऊ॥

नाम्नामकारि बहुधा निज सर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः॥

श्रीचैतन्य-महाप्रभुने कहा है कि नाममें भगवान्ने अपनी सब-की-सब शक्ति रख दी। अनेक साधनोंमें जो शक्ति है, सामर्थ्य है, जिन साधनोंके करनेसे जीवका कल्याण होता है, कलियुगको देखकर भगवान्ने भगवन्नाममें उन सब साधनोंकी शक्ति रख दी। जो अनेक साधनोंमें ताकत है, वह सब ताकत नाम महाराजमें है। इसे स्मरण करनेके लिये समयका प्रतिबन्ध भी नहीं है। सुबह, दोपहर या रातमें, किसी समय जप करें। 'ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य ही करें, दूसरे न करें, भाई लोग जप करें, माता-बहनें न करें'—ऐसा कोई नियम नहीं है।

कलिसंतरणोपनिषद्में नाम-महिमा आयी है। एक

बार नारदजी ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने पूछा—'कैसे आये हो?' नारदजीने कहा—'पृथ्वीमण्डलपर अभी कलियुग आया हुआ है। इस कलियुगमें जीवोंका उद्धार सुगमतापूर्वक कैसे हो?' ब्रह्माजीने कहा—'कलियुगके पापोंको दूर करनेके लिये यह महामन्त्र है—***हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥*' '**इति षोडशकं कल्मष-नाशनम्**' भगवन्नाम ही इस कलियुगमें सुगम साधन है।

फिर नारदजीने पूछा—'**कोऽस्ति विधिरिति सहोवाच प्रजापतिः**' भगवन्नाम लेनेकी विधि क्या है? तो ब्रह्माजीने उत्तर दिया—'**नास्ति विधिः।**' कोई कैसा ही हो; पापी हो या पुण्यात्मा, वह नाम जपता हुआ सायुज्य, सालोक्य आदि मुक्तियोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये नाम लिये जाओ बस। कलियुगी जीवोंके लिये कितनी सुगम बात बता दी! अगर विधियाँ बता देते तो मुश्किल हो जाती। नाम-जपमें निषेध कुछ है ही नहीं। '***सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू***'सबके लिये सुलभ है। '**सुलभं भगवन्नाम वागस्ति वशवर्तिनी**'। भगवान्का नाम सुलभ है, इसपर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है। वर्तमान सरकारने भी कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया है, आगे खतरा हो सकता है, परंतु अभी कोई प्रतिबन्ध नहीं है। खुला नाम लो भले ही, कोई मना नहीं है।

राम दड़ी चौड़े पड़ी, सब कोई खेलो आय।
दावा नाहीं सन्तदास, जीते सो ले जाय॥

किसीका दावा नहीं है। सब कोई भगवान्का नाम ले सकते हैं। जैसे बापकी जगहपर बेटेका हक लगता है, वैसे भगवन्नामपर हमारा पूरा-का-पूरा हक लगता है; क्योंकि यह हमारे बापका नाम है, ऐसा अपनेको अधिकार मिला हुआ है। कितनी मौजकी बात है, कितने आनन्दकी बात है यह! मनुष्य-शरीर मिल गया और फिर इसमें भगवान्का नाम मिल गया।

हाथ काम मुख राम है, हिरदे साँची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥

हाथोंसे अपना काम करते हुए मुँहसे 'राम' नाम जप करते रहें। बहनें-माताएँ घरका काम करें। भाई लोग खेतोंमें या दूकानोंमें काम करें। वे जहाँ हों, वहाँ ही रहकर काम करते रहें। हृदयमें भगवान्से स्नेह बना रहे। हमें भगवान्की तरफ ही चलना है। मनुष्य-शरीर मिला है, इसलिये उद्धार करना है। हृदयमें सच्चा प्रेम भगवान्से हो, सांसारिक पदार्थोंसे, भोगोंसे न हो। संतोंने कहा है—

नर तन दीनो रामजी, सतगुरु दीनो ज्ञान,
ऐ घोड़ा हाँको अबे, ओ आयो मैदान।
ओ आयो मैदान बाग करड़ी कर सावो,
हृदय राखो ध्यान नाम रसनासे गावो।
कुण देखाँ सगराम कहे आगे काढ़े कान,
नर तन दीनो रामजी, सतगुरु दीनो ज्ञान॥
कह दास सगराम बरगड़े घालो घोड़ा,
भजन करो भरपूर रह्या दिन बाकी थोड़ा।
थोड़ा दिन बाकी रह्या कद पहुँचोला ठेट,
अध बिचमें बासो बसो तो पड़सो किणरे पेट।
पड़सो किणरे पेट पड़ेला भारी फोड़ा,
कहे दास सगराम बरगड़े घालो घोड़ा॥

ऐसा बढ़िया मौका आ गया है। कितना सीधा सरल रास्ता संतोंने बता दिया! ***'संतदास सीधो दड़ो सतगुरु दियो बताय'***, **'धावन्निमिल्य वा नेत्रे न स्खलेन्नपतेदिह।'** इस मार्गमें मनुष्य न स्खलित होता है, न गिरता है, न पड़ता है—ऐसा सीधा और सरल रास्ता है। सन्तोंने कृपा करके बता दिया। हर कोई ऐसी गुप्त बात बताते नहीं हैं—

राम नामकी संतदास दो अन्तर धक धूण।
या तो गुपती बात है कहो बतावे कूण॥

तुलसीदासजी कहते हैं ***'कमठ सेष सम धर बसुधा के'***—'राम' नामके दो अक्षर 'र' और 'म' शेषनाग और कमठके समान हैं। जैसे पृथ्वीको धारण करनेवाले शेष और कमठ हैं, ऐसे यह जो 'राम' नाम है, इसमें 'र' शेषनाग है ('र' का आकार भी ऐसा ही होता है) और 'म' कमठ (कछुआ) है। संसारमात्रको धारण करनेमें रामजी महाराज कमठ और शेषके समान हैं। अपने भक्तको धारण करनेमें उनके लिये कौन बड़ी बात है!

सरवर पर गिरवर तरे, ज्यूँ तरवरके पात।
जन रामा नर देहको तरिबो किती एक बात॥

भगवान्‌के नामसे समुद्रके ऊपर पत्थर तैर गये तो मनुष्यका उद्धार हो जाय—इसमें क्या बड़ी बात है! भगवान्‌ने उद्धार करनेके लिये ही इसको मनुष्य-शरीर दिया। भगवान्‌ने भरोसा किया कि यह अपना उद्धार करेगा। सज्जनो! मुफ्तमें बात मिली हुई है। भगवान्‌ने जब विचार किया कि यह उद्धार करे तो भगवान्‌की कृपा एवं उनका संकल्प हमारे साथ है। पतनमें हमारा अपना हाथ है, उसमें भगवान्‌का हाथ नहीं है। उनका संकल्प हमारे उद्धारका है, कितनी भारी मदद है। सब सन्त, ग्रन्थ, धर्म, सद्‌गुरु, सत्-शास्त्र हमारे साथ हैं। ऐसा भगवान्‌का नाम है। केवल हम थोड़ी-सी हाँ-में-हाँ मिला दें। आगे गोस्वामीजी कहते हैं—

जन मन मंजु कंज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से॥
(रा०च०मा० १।२०।८)

ये नाम महाराज भक्तोंके मनरूपी सुन्दर कमलमें विहार करनेवाले भौंरेके समान हैं और जीभरूपी यशोदाजीके लिये श्रीकृष्ण और बलरामजीके समान आनन्द देनेवाले हैं। भक्तोंका मन बहुत सुन्दर कमलके समान है, उसके ऊपर राम, राम, राम········नामरूपी भँवरे मँडरा रहे हैं। ये मनके ऊपर बैठे हैं। मन हरदम भगवान्‌के नाममें लगा हुआ है। इस कारण भक्तोंको दूसरी चीज सुहाती नहीं। भगवन्नाममें यदि कोई बाधा लगती है, तो वह उन्हें सुहाती नहीं है।

संगति-महिमा

मलयागिरि चंदन के वृक्षों की
जिस जंगल को लग जाय पवन।
सारे के सारे महक उठें
सारा जंगल हो जाय चंदन॥

परोपकार-महिमा

निष्कपट परायी सेवा में
जिसका सब जीवन बीता है।
वह महापुरुष मरने पर भी
सृष्टि के अंत तक जीता है॥

[कवि—अज्ञात; प्रेषिका—श्रीमती रामकिशोरी देवी अग्रवाल]

'मैं भगतन को दास, भगत मेरे मुकुट मणि'

[यह कथानक सोशल मीडियामें आया था, वास्तविकताको प्रमाणित करनेवाले कोई स्रोत उपलब्ध नहीं हैं, किंतु प्रभुकी भक्तवत्सलता असंदिग्ध है। साधकोपयोगी होनेसे प्रकाशित।—सम्पादक *]*

राजस्थानके पिलानीमें बिड़लाजीका काम जोर-शोरसे चल रहा था। उनके इंजीनियर इस कामको देख रहे थे।

'ये बिल्डिंग मुझे जल्दी चाहिये बस, मैं कुछ नहीं जानता।'

बिड़लाजीका एक प्रिय इंजीनियर था, रहा होगा करीब ५५ वर्षका।

उसको स्पष्ट आदेश दे दिया था उन्होंने।

'सर! हो जायगा' उस इंजीनियरने स्वीकार किया और अपने लोगोंको डाँटना-डपटना चालू कर दिया था—

'एक महीनेमें यह पूरी बिल्डिंग बनकर तैयार होनी है, इसलिये मुझे कोई बहाना नहीं चाहिये।'

'भैया! एक महीनेके लिए मुझे यहाँ रहने दो ना।' एक साधुने आकर उस इंजीनियरसे कहा था।

'भाग यहाँसे, कहाँ-कहाँसे आ जाते हैं······ये बाबाजी लोग······काम करना नहीं है······फोकटके खानेकी आदत जो लग गयी है'······बहुत बड़बड़ाया था वो इंजीनियर।

साम्यवादसे प्रभावित था ये बिड़लाजीका इंजीनियर, इसलिये कुछ नास्तिकता भी आ ही गयी थी।

'सर! आप इन बाबाजी और भगवान्‌से क्यों चिढ़ते हैं?' मजदूर लोग इंजीनियर साहबको छेड़ते हैं।

'देखो! मुझे कर्मवादी प्रिय हैं। अरे! भगवान्‌ने कहीं कहा है क्या कि माला लो और मुझे परेशान करते रहो।'

इंजीनियरकी बातें सुनकर मजदूर लोग हँसते थे।

'सुनो! रामकुमार।' (इंजीनियरका नाम रामकुमार था)

बिड़लाजी उस साधुको अपने साथ ले आये थे। साधु सीधे बिड़लाजीसे बोल आया था।

एक कमरा इन साधु महात्माजीको दे दो।

'पर सर! अभी तो पूरा काम हुआ भी नहीं है।' इंजीनियरकी ओर देखते हुए बिड़लाजी बोले—

'कोई बात नहीं, मैंने इनको सारी स्थिति बता दी है कि मात्र दरवाजा है, लाइट भी नहीं है और ये कुछ दिनमात्र रहेंगे।'

इंजीनियर जानता था कि बिड़लाजी आस्तिक व्यक्ति हैं और सन्तों-महात्माओंको ये बहुत मानते हैं।

जब बिड़लाजीको ही आपत्ति नहीं है, तो मैं क्या हूँ।'

पर ये ईश्वर, ये धर्म, ये आस्था·····इसीने तो मनुष्यजातिको आलसी बना दिया है।

एक कमरा दिखा दिया था उन महात्माजीको।

× × ×

महात्माजी वृद्ध थे, इनके पास एक चित्रपट था, गोपालजीका। बस, कुछ काजू-बादाम अपने पास रखते थे।

इंजीनियरका कॉटेज पासमें ही था, वह रोज महात्माजीके भजन आदि और गोपालजीकी मनुहार सुनता था।

महात्माजी अपने चित्रपटके गोपालजीको भोग लगाते थे।

इंजीनियर कहता था—'सुगन्धि बहुत अच्छी आती है बाबाकी कुटिया से।'

'ईश्वरको तो आप मानते नहीं हो' सब स्टाफ इंजीनियर साहबको छेड़ते थे। ये सहज थे, नास्तिक होनेके बाद भी।

'ईश्वर है ही नहीं, ये तो इन धन्धाखोरोंका काम है।'

फिर शुरू हो गये थे ये इंजीनियर साहब।

'लो प्रसाद'

महात्माजी भोग लगाते थे, उसे सबको बाँटते थे। इंजीनियरको पहले देते।

भोग लगाते हुए एक दिन देख लिया था इस इंजीनियरने इन महात्माजीको उसे बड़ा कौतूहल-सा लगा। ये क्या!

सामने मुसकराते गोपालजीका चित्रपट है, उनके सामने बैठे हैं ये महात्माजी, बड़े प्रेमसे आँखें बन्दकर

खिला रहे हैं।

और प्रेमसे प्रार्थना कर रहे हैं·····नेत्रोंसे अश्रुधार बह रही है।

रोमांच हो रहा था ये सब देखकर इंजीनियरको।

भावुक हैं·····ये महात्मा·····अपने बच्चेकी तरह प्यार करते हैं·····'गोपालजी' कहकर इस चित्रको।' ऐसा विचार करते हुए इंजीनियर जाकर सो गये।

× × ×

'ओह! इंजीनियर साहब! देखो! ये बाबा तो शायद मर गये।'

चौकीदारने सुबह-ही-सुबह आवाज दी·····इंजीनियर उठे·····और बदहवाससे दौड़े।

शरीर शान्त हो गया था महात्माजीका·····'कैसे'

कैसे, क्या? इसका कोई उत्तर है क्या? मृत्यु आ गयी।'

महात्माजीके शरीरका संस्कार करवाया उन इंजीनियर साहबने।

कमरेमें आये·····महात्माजीके गोपालजी सो रहे हैं।

इस समयतक तो महात्माजी इन्हें उठा देते थे·····और भोग भी लगा देते थे, पर बेचारे बिना महात्माजीके·····!

फिर अपने कॉटेजमें गये इंजीनियर·····पर रह-रहकर वही गोपालजीका चित्रपट याद आ रहा था।

वे फिर गये कुटियामें, इस बार कुछ बादाम लेकर गये।

उठाया चित्रपटको·····पोछा·····महात्माजीकी तरह ही हाथ जोड़ा, फिर चन्दन, कुछ फूल बाहरसे ले आये।

और बादाम भोग लगा दिये।

आँखें बन्द करके वे बैठ गये·····ऐसे ही करते थे वे महात्माजी!

'अरे! इंजीनियर साहब!····· थोड़ा बाहर आओ तो कोई मिलने आया है आपसे।' किसीने आवाज दी थी।

इंजीनियर साहब बाहर आ गये। बिल्डिंगकी बातें हुईं। मैटेरियल अच्छा लगना चाहिये·····सारी बातें हुईं।

फिर इंजीनियर साहब उस कमरेमें गये, जहाँ भोग लगाकर आये थे।

ओह! चौंक गये उस दृश्यको देखकर·····!

नास्तिकता आस्तिकतामें कब बदल गयी·····पता नहीं चला।

× × ×

'जी! भाईजी! आज आपने जो केले मुझे दिये थे, वे सड़े-गले थे, मेरे गोपालजीको वे पसन्द नहीं आये।'

ऋषिकेशमें महात्माजी बैठे थे·····हनुमानप्रसाद पोद्दारजीके सामने·····और शिकायत कर रहे थे।

'क्यों तुम्हारे 'गोपालजी' तुमसे बातें करते हैं?'

'और क्या? प्रत्यक्ष·····भाईजी! जो खानेकी इच्छा हो, वो बोल देते हैं।'

'अच्छा! देखो! मुझे पता नहीं था कि देनेवालेने आपको सड़े केले दे दिये, क्षमा करना।'

भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारजीने दूसरे व्यक्तिसे कुछ मेवे मँगवा दिए थे।

'हाँ, ये ठीक हैं, मेरा गोपाल इसे प्रेमसे खायेगा।'

तभी सेठजी जयदयाल गोयन्दकाजी वहाँ आये·····

'इनको पहचाना आपने ये इंजीनियर·····।

बिड़लाजीके यहाँ·····हाँ, ·····कैसे हो?

'पर अब तो ये महात्माजी हैं, इनके तो चरण छूने चाहिये।'

'पर महात्माजी सेठजीसे कैसे अपने चरण छुवाते।

पर तुमने वहाँ ऐसा क्या देखा, जिसे देखकर इंजीनियरसे तुम महात्मा बन गये?'

हनुमानप्रसाद पोद्दारजीने पूछा था।

× × ×

'मैं उस दिन आया·····बाहर व्यवसायकी चर्चा करके, जैसे ही आया उस कमरेमें, जहाँ गोपालजीके चित्रपटको मैंने कुछ मेवोंका भोग लगाया था। बस, उस समय मैंने वहाँ देखा—एक ज्योतिपुंज है और उस ज्योतिपुंजमें एक बालक है। सुन्दर-सा बालक! वह मेवा उठाकर खा रहा है·····और मुसकरा रहा है।

ये मैंने जैसे ही देखा·····मैं स्तब्ध रह गया! वह बालक मुझे देखकर मुसकरा रहा था। मेरा सब कुछ छीन लिया उसने।

और फिर तो मैं कहीं नहीं गया। वहींसे निकल गया। किसीका शौक नहीं रहा। बस, अपने उस गोपालजीको छातीसे चिपकाते हुए बाबाजी बन गया।

पता नहीं आगे क्या होगा? पर भाईजी! मेरे गोपालजीका ख्याल रखना। मुझे अब इनकी बहुत चिन्ता होने लगी है।

इतना कहकर वे चले गये।

× × ×

'क्या हुआ? गंगाके उस किनारे भीड़ है, क्या कोई घटना घट गयी है?' पोद्दारजीने पूछा।

'हाँ, वहाँ एक महात्माजी रहते थे, उनका शरीर शान्त हो गया।'

और लोगोंने बताया।

'ओह! ठाकुरजी इनकी आत्माको शान्ति दें।' इतना कहकर जैसे ही आगे बढ़े थे पोद्दारजी.....तभी.....

'भाईजी! मेरे गोपालजीका ख्याल रखना'.....

ये आवाज कानमें गूँजी भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारजीके।

ओह! ये वही इंजीनियर, जो महात्मा बने थे; उनका शरीर शान्त हो गया!

तेज चालमें चलते हुए, वहाँ गये पोद्दारजी!

उनकी कुटियासे 'गोपालजी' का चित्रपट ले आये और अपने साथ गीतावाटिका गोरखपुरमें लाकर अपने कमरेमें रख दिया था भाईजीने! गोपालजीके भोगका वे सब प्रबन्ध करते थे।

एक दिन भाईजीकी कोई दूरकी बहन आयी थीं, रतनगढ़ राजस्थानसे।

'भाईजी! ये चित्रपट हमें दे दो, मैं सेवा करूँगी।'

तब पोद्दारजीके कमरेकी सफाई भी चल रही थी। भाईजीने अपनी बहनसे कहा—'सेवा करनी होगी,पूरी सेवा। भोग इत्यादि सब।'

हाँ, करूँगी। भाईजीके यहाँ गोरखपुरसे वे चित्रपटको ले गयीं, अपने घर राजस्थान रतनगढ़में।

× × ×

'बहन! वो गोपालजी कहाँ हैं? वो जो तू गोरखपुरसे लायी थी।'

भाई हनुमानप्रसाद पोद्दारजी दो वर्षके बाद गये थे अपने गाँव रतनगढ़; तब अपनी मुँहबोली बहनके यहाँ भी गये। और जब गये तब पूछ लिया—'गोपालजी कहाँ हैं?'

तब भाईजीकी बहनने कहा—भाईजी! कानपुरसे एक तिवारीजी आये थे। वे मुझे खोजते हुए आये।

× × ×

'आपके यहाँ गोपालजी हैं?'

दरवाजा खटखटानेपर मैंने ही खोला था।

'कौन गोपालजी?' मैंने पूछा।

मैं तिवारी हूँ, कानपुरसे आया हूँ। मेरे गुरुजीके आराध्यदेवका चित्रपट आपके यहाँ है, जो आपको भाईजी हनुमानप्रसाद पोद्दारजीने दिया था।

'बहन! मेरे सपनेमें मेरे गुरुजी आये, मैंने उन्हें अपना गुरु मान लिया था। वैसे वे किसीको शिष्य बनाते नहीं थे, पर ऋषिकेशमें मैंने उन्हें गुरु मान लिया था।'

उन्होंने मुझे कहा—मैंने गोपालजी हनुमानप्रसाद पोद्दार भाईजीको दिये थे, पर भाईजीने राजस्थानमें अपनी बहनको दे दिये, पर वहाँ सेवा नहीं हो रही है; इसलिये तुम जाओ और जाकर मेरे गोपालजीको अपने यहाँ ले आओ। तुम सेवा करना उनकी। मेरे गोपालजीको बहुत भूख लगती है। उनको खिलाना। समय-समयपर ध्यान देना।

बहन! मेरे गुरुजीने मुझे ये सब कहा और मैं कलसे निकला हूँ कानपुरसे। उन सज्जनने मुझे ये सारी बातें बतायीं।

मैंने दे दिये भाईजी! उनको वो गोपालजी!

भाईजी भी चकित थे.....।

× × ×

ये घटना गौरांगीने मुझे सुनायी और ये भी कहा कि वो गोपालजी कानपुरमें आज भी विराजमान हैं।

श्रीराधे!

कलिकालमें गुरुकी महिमा

वास्तवमें गुरुकी महिमाका पूरा वर्णन कोई कर सकता ही नहीं। गुरुकी महिमा भगवान्‌से भी अधिक है। इसलिये शास्त्रोंमें गुरुकी बहुत महिमा आयी है।

गुरुकी महिमाके विषयमें एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिंद दियो बताय॥

गोविन्दको बता दिया, सामने लाकर खड़ा कर दिया, तब गुरुकी बलिहारी होती है। गोविन्दको तो बताया नहीं और गुरु बन गये—यह कोरी ठगायी है। केवल गुरु बन जानेसे गुरुपना सिद्ध नहीं होता। इसलिये अकेले खड़े गुरुकी महिमा नहीं है। महिमा उस गुरुकी है, जिसके साथ गोविन्द भी खड़े हैं—***'गुरु गोबिंद दोऊ खड़े'*** अर्थात् जिसने भगवान्‌की प्राप्ति करा दी है।

शास्त्रोंमें आयी गुरु-महिमा ठीक होते हुए भी वर्तमानमें प्रचारके योग्य नहीं हैं। कारण कि आजकल दम्भी-पाखण्डी लोग गुरु-महिमाके सहारे अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। इसमें कलियुग भी सहायक है, क्योंकि कलियुग अधर्मका मित्र है—**'कलिनाधर्ममित्रेण'** (पद्मपुराण, उत्तर १९३। ३१)। वास्तवमें गुरु-महिमा प्रचार करनेके लिये नहीं है, प्रत्युत धारण करनेके लिये है। जो गुरु स्वयं ही गुरु-महिमाकी बातें कहता है, गुरु-महिमाकी पुस्तकोंका प्रचार करता है तो इससे सिद्ध होता है कि उसके मनमें गुरु बननेकी इच्छा है। जिसके भीतर गुरु बननेकी इच्छा होती है, उससे दूसरोंका भला नहीं हो सकता। इसलिये गुरुका निषेध नहीं करके, प्रत्युत पाखण्डका निषेध करना है। गुरुका निषेध तो कोई कर सकता ही नहीं।

गुरुकी महिमा वास्तवमें शिष्यकी दृष्टिसे है, गुरुकी दृष्टिसे नहीं। एक गुरुकी दृष्टि होती है, एक शिष्यकी दृष्टि होती है और एक तीसरे व्यक्तिकी दृष्टि होती है। गुरुकी दृष्टि यह होती है कि मैंने कुछ नहीं किया, प्रत्युत जो स्वत: स्वाभाविक वास्तविक तत्त्व है, उसकी तरफ शिष्यकी दृष्टि करा दी। तात्पर्य हुआ कि मैंने उसीके स्वरूपका उसीको बोध कराया है, अपने पाससे उसको कुछ दिया ही नहीं। चेलेकी दृष्टि यह होती है कि गुरुने मेरेको सब कुछ दे दिया। जो कुछ हुआ है, सब गुरुकी कृपासे ही हुआ है। तीसरे व्यक्तिकी दृष्टि यह होती है कि शिष्यकी श्रद्धासे ही उसको तत्त्वबोध हुआ है।

गुरु बनानेपर वे उसकी महिमा बताते हैं कि गुरु गोविन्दसे बढ़कर हैं। इसका परिणाम यह होता है कि चेला भगवान्‌के भजनमें न लगकर गुरुके ही भजनमें लग जाता है। यह बड़े अनर्थकी, नरकोंमें ले जानेवाली बात है। एक अच्छे सन्त थे। उनके चेलोंने उन्हें भगवान्‌से बढ़कर मानना शुरू कर दिया तो उन्होंने चेला बनाना ही छोड़ दिया और फिर जीवनभर कभी चेला बनाया ही नहीं। कारण कि चेले भगवान्‌को तो पकड़ते नहीं, गुरुको ही पकड़ लेते हैं। गुरुकी बात सुनकर मनुष्य भगवान्‌में लग जाय तो ठीक है, पर वह गुरुमें ही लग जाय तो बड़ी हानिकी बात है।

श्रीशरणानन्दजी महाराजने लिखा है—

'जो उपदेष्टा भगवद् विश्वासकी जगहपर अपने व्यक्तित्वका विश्वास दिलाते हैं और भगवत्सम्बन्धके बदले अपने व्यक्तित्वसे सम्बन्ध जोड़ देते हैं, वे घोर अनर्थ करते हैं।'

इसलिये जो गुरु अपनेपर विश्वास कराता है, अपनी सेवा करवाता है, अपना चित्र देता है, उसको अपने गलेमें धारण करवाता है, अपने रूपका ध्यान करवाता है, अपने चरण धुलवाता है, वह पतनकी ओर ले जानेवाला है। उससे सावधान रहना चाहिये।

भगवान्‌की जगह अपनी पूजा करवाना पाखण्डियोंका काम है। जिसके भीतर शिष्य बनानेकी इच्छा है, रुपयोंकी इच्छा है, मकान (आश्रम आदि) बनानेकी इच्छा है, मान-बड़ाईकी इच्छा है, अपनी प्रसिद्धिकी इच्छा है, उसके द्वारा दूसरेका कल्याण होना तो दूर रहा, उसका अपना कल्याण भी नहीं हो सकता।

वास्तवमें आजकल सद्‌गुरु मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। अत: जबतक हमें सच्चा गुरु न मिले, हमें श्रीकृष्ण भगवान्‌को ही गुरु मानकर जो कि 'जगद्‌गुरु' हैं, उनके द्वारा जो गीताजीमें सिद्धान्त बताये हैं, उनका पालन करना चाहिये। अत: जब आवश्यक होगा भगवान् कृपा करके हमें गुरुसे अवश्य मिलवा देंगे। मानसमें ऐसा लिखा भी है ***'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।'***

[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]

प्रेमके अवतार प्रभु श्रीराम

(डॉ० श्रीआदित्यजी शुक्ल)

सृष्टिमें अनेक अवतारोंकी कथा है। उन सभी अवतारोंमें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण-अवतार सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हैं। अन्य अवतारोंकी तुलनामें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण जनमानसमें ज्यादा रचे-बसे हैं। लोगोंके नाम,काम-धामसे लेकर सुबहसे रात्रितक होनेवाले अभिवादनोंमें श्रीराम एवं श्रीकृष्णके नाम सहज सम्मिलित रहते हैं। अवतारके रूपमें श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी प्रसिद्धिका प्रमुख कारण है कि वे नर-अवतार थे एवं तात्कालिक समयमें समाजके हर क्षेत्रमें एक आदर्शके रूपमें विद्यमान रहे। श्रीराम एवं श्रीकृष्ण, दोनोंकी यह विशेषता रही कि उन्हें अपने समयमें जनमानसका अथाह प्रेम मिला, आजतक मिल रहा है और युगों-युगोंतक मिलता रहेगा। श्रीराम एवं श्रीकृष्णके एक पुत्र, पिता, पति, भाई, सखा, मित्र, राजा, दाता, पालक, स्वामी, गुरु, शिष्य और न जाने कितने रूपोंमें सम्बन्ध आज भी हमें हमारे अपने सम्बन्धोंको प्रगाढ़ बनानेमें मार्गदर्शन कर रहे हैं। श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनों ही प्रेमके अवतार हैं। दोनोंके प्रेमकी अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। एक भक्तके रूपमें दोनोंके प्रेममें अनिर्वचनीय आनन्द है। इस लेखमें हम श्रीरामके प्रेमकी विशेषताओंका चिन्तन करेंगे।

'रामहि केवल प्रेमु पिआरा'—श्रीरामका प्रेम सूर्यके प्रकाशके समान सबके लिये समानरूपसे विद्यमान है। संसारके विकारोंसे मुक्त होकर निर्मल मनसे प्रेमपूर्वक जो श्रीरामकी आराधना करते हैं, श्रीराम स्वयं उन्हें अपने प्रेमका पात्र बना लेते हैं। जनमानसमें श्रीरामके चरित्र, मर्यादा, वचन-परायणता, दयालुतापूर्ण व्यवहार इत्यादि गुणोंकी भले ही अधिक चर्चा होती है, लेकिन श्रीरामको एकमात्र चीजसे प्यार है—और वह है 'प्रेम'। जो जाननेवाले हैं या जो जानना चाहते हैं, वे ही इस मर्मको जान सकते हैं।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥

(रा०च०मा० २।१३७।१)

इस मर्मको जानकर श्रीरामकी प्रेमपूर्वक आराधना करनेसे हमारे हृदयमें श्रीरामका प्रेमावतार हो सकता है। जिसके माध्यमसे हम न केवल अपने आराध्यके प्रति प्रेमको बल्कि हमारे सांसारिक सम्बन्धोंमें प्रेमको भी परिभाषित कर सकते हैं।

श्रीरामका प्रेमावतार—श्रीरामको कैसे प्रकट या प्राप्त किया जा सकता है, इसका एक सरल उपाय भगवान् शंकर बताते हैं। एक बार रावणके अत्याचारसे व्याकुल होकर पृथ्वीसहित सब देवता अपनी रक्षाके लिये श्रीविष्णुसे प्रार्थना करना चाहते हैं। वे विचार करते हैं कि प्रभुको अपनी वेदना सुनाने कहाँ जायँ। इस दौरान कोई उनके धाम वैकुण्ठपुरी जानेको कहता, तो कोई कहता कि प्रभु तो क्षीरसागरमें निवास करते हैं।

बैठे सुर सब करहिं बिचारा। कहँ पाइअ प्रभु करिअ पुकारा॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।

(रा०च०मा० १।१८५।१-२)

भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं कि जिस समय सभी देवता 'प्रभु कहाँ मिलेंगे' इस प्रश्नमें उलझे हुए थे, उस समय मैं भी वहाँ था। अवसर पाकर मैंने देवताओंसे कहा कि ईश्वर तो देश, काल, दिशा, विदिशासे परे सब जगह समान रूपसे व्यापक हैं। वे प्रेमपूर्वक स्मरण करनेसे वैसे ही प्रकट होते हैं, जैसे अव्यक्त रूपसे सर्वत्र व्याप्त 'अग्नि' प्रकट हो जाती है।

तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। अवसर पाइ बचन एक कहेऊँ॥
हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

(रा०च०मा १।१८५।४—७)

शंकरजी कहते हैं कि मेरी बातोंको सुनकर ब्रह्माजीसहित सभी पुलकित होकर नेत्रोंमें प्रेमाश्रु लिये हाथ जोड़कर ***'जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता'***की स्तुति करते हुए श्रीहरिको प्रसन्न एवं प्रकट करनेमें सफल होते हैं, जिसके परिणामस्वरूप श्रीरामका अवतार होता है।

श्रीरामके प्रेमकी विशेषताएँ

१-श्रीरामको केवल प्रेम प्यारा है। अपने भक्तोंके साथ उनका प्रेमका नाता है। श्रीराम भक्तोंसे प्रेम पाकर उनके वशमें हो जाते हैं। श्रीहनुमान्‌जीकी भक्ति इसका एक उदाहरण है।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

(रा०च०मा० १। २६। ६)

२-श्रीरामको प्रेम करनेवालोंको उनके पास जाना नहीं पड़ता है। बल्कि श्रीराम अपने प्रेम करनेवाले विभिन्न ऋषि-मुनियोंके आश्रम तथा अहल्या, केवट, जटायु, शबरी, सुग्रीव एवं हनुमान्-जैसे भक्तोंके पास स्वयं चलकर जाते हैं।

३-सामान्यत: यह कहा जाता है कि अपने इष्टको सहज प्रसन्न करनेके लिये उनसे अकारण प्रेम करना चाहिये। मगर श्रीराम अपने भक्तोंके सकारण प्रेमको भी स्वीकारते हैं। श्रीरामसे प्रेम करनेवाले अधिकांश लोग उनसे अकारण नहीं; बल्कि सकारण प्रेम करते हैं। श्रीरामसे प्रेम करनेवाला हर व्यक्ति उनसे कुछ-न-कुछ अपेक्षाके साथ ही प्रेम करता है। जैसे दशरथजीको जीवनका आधार चाहिये तो कौसल्याको वात्सल्यका प्यार, कैकेयीको यश चाहिये तो सीताको सर्वस्व, भरतको सेवा चाहिये तो लक्ष्मणको सान्निध्य, ऋषियोंको सुरक्षा चाहिये तो विश्वामित्रको यज्ञकी रक्षा, अहल्याको स्वीकार चाहिये तो केवटको उद्धार, शबरीको प्रतीक्षासे मुक्ति चाहिये तो मुनियोंको मुक्तिकी युक्ति, सुग्रीवको सहयोग चाहिये तो विभीषणको सम्मान तथा अंगदको शरण चाहिये तो हनुमान्‌जीको शरणागति। इस तरह श्रीरामसे प्रेम करनेवाला हर व्यक्ति उनसे कुछ-न-कुछ अपेक्षा रखता है और श्रीराम उनके प्रेमका मान रखकर सबकी अपेक्षा सहर्ष पूर्ण करते हैं। एक मनुष्यके रूपमें हम भी सबसे सकारण प्रेम करते हैं। हमारे लिये किसीपर अकारण प्रेम लुटाना या तो बहुत कठिन है या असम्भव। अत: सकारण प्रेमके अभ्यासी हम-जैसे लोगोंके लिये श्रीरामका प्रेम एक सरल एवं श्रेष्ठ आश्रय है।

४-श्रीराम सहज कृपालु हैं। वे निर्मल प्रेमके भूखे हैं तथा अपने भक्तोंपर अकारण कृपा बरसाते हैं। उनका स्वभाव बहुत कोमल है। सकल विश्वके मालिक होकर भी वे किसीसे कोई कठोर बात नहीं कहते।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥

(रा०च०मा० ५। ५७। ५)

एक मनुष्यके रूपमें हम सबसे जाने-अनजाने अपराध होता रहता है। श्रीराम ऐसे स्वामी हैं, जो अपराधीपर भी क्रोध नहीं करते।

मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥

(रा०च०मा० २। २६०। ५)

इसलिये श्रीरामको प्रेम करना एवं उनसे प्रेम पाना औरोंकी तुलनामें ज्यादा आसान है। इस सत्यको जानकर हमें श्रीरामके प्रेमकी विशेषताओंको समझना एवं उसीके अनुसार उनके प्रेमपात्र बननेका प्रयास करना चाहिये।

५-ऐसा भी नहीं कि श्रीराम सबका प्रेम स्वीकार करते हैं। वे प्रेम-निवेदनको अस्वीकार करनेमें भी विख्यात हैं। इसके लिये हमें सकारण प्रेम एवं सकाम प्रेममें अन्तरको समझकर श्रीरामसे प्रेम करना चाहिये। जब श्रीरामकी सुन्दरतासे मोहित एवं कामके वशीभूत होकर शूर्पणखा अपने स्वाभाविक रूपसे अलग छलपूर्वक सुन्दर रूप बनाकर श्रीरामसे प्रेम-याचना करती है। तब श्रीराम शूर्पणखाके छल, कपट एवं प्रपंचसे भरे कामयुक्त प्रेमको अस्वीकार कर देते हैं; क्योंकि श्रीरामके प्रेमपात्र बननेके लिये केवल एक ही पात्रता है और वह है—निर्मल मनसे उनके प्रति प्रेम एवं भक्तिभाव रखना। श्रीराम स्वयं कहते हैं—मुझे कपट, छल, छिद्र नहीं भाते।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(रा०च०मा० ५। ४४। ५)

अत: श्रीराम सकारण प्रेमको तो स्वीकार करते हैं, लेकिन सकाम प्रेमको नहीं। श्रीराम प्रेमके ऐसे अवतार हैं, जिन्हें प्राप्त करनेके लिये केवल निर्मल मनकी आवश्यकता है।

६-स्थूल रूपसे संसारमें तीन प्रकारके प्रेम होते हैं। शारीरिक प्रेम, बुद्धि-प्रेम तथा मनका प्रेम।

शारीरिक प्रेम—शरीरसे शरीरका सतही एवं स्थूल प्रेम है, जो हमारे व्यावहारिक सम्बन्धोंमें शामिल रहता है।

बुद्धि-प्रेम—बुद्धिसे बुद्धिका प्रेम एक सूक्ष्म प्रेम है, जिसमें मन, वचन, शरीरको छोड़कर केवल बुद्धिकी भागीदारी होती है।

मनका प्रेम—मनसे मनका प्रेम एक आदर्श प्रेम है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। यह प्रेम देश, काल, समय, काया एवं लिंगकी सीमासे परे होता है। अध्यात्मकी दृष्टिसे पवित्र मनको ईश्वरका स्वरूप कहा गया है। इसलिये पवित्र मनके इस प्रेमको अलौकिक प्रेम भी कहते हैं। श्रीरामकी विशेषता है कि वे शरीर, बुद्धि एवं मन—तीनों प्रकारके प्रेमको स्वीकार करते हैं। वे मौन प्रेम एवं मुखर प्रेम—दोनोंकी भाषा समझते हैं।

७-श्रीरामका प्रेम मोह एवं आसक्तिसे परे है। श्रीरामके प्रेमकी यह विशेषता है कि वे प्रेममें न तो स्वयं मोह एवं आसक्तिके शिकार होते हैं और न ही उनसे प्रेम करनेवालोंके मनमें मोह एवं आसक्ति पनपने देते हैं। श्रीराम जिससे या जिसने भी श्रीरामसे प्रेम किया है, उसने उस प्रेमका विस्तार किया है। वनवासके दौरान श्रीराम अनेक लोगोंसे मिलते हैं एवं सबसे प्रेमवत् सम्बन्ध स्थापित करते हैं। मगर वनमें किसीने उन्हें अपने पास रोकनेका प्रयास नहीं किया। बल्कि सबने उनके आगे बढ़नेका मार्ग प्रशस्त किया। यदि श्रीरामके प्रति उनके मनमें प्रेमकी जगह मोह होता, तो वे उन्हें वनवासके दौरान अपने पास या अपने आश्रममें रोकनेका प्रयास करते। जब श्रीराम गंगा पार करके भारद्वाजजीके आश्रम पहुँचते हैं, तो भारद्वाजजी उन्हें वाल्मीकिजीके पास भेज देते हैं। वाल्मीकिजी उन्हें आगे चित्रकूट भेज देते हैं। चित्रकूटसे वे ऋषि अत्रिके पास पहुँचते हैं।

अत्रि ऋषि उन्हें ऋषि शरभंगके पास भेजते हैं। शरभंगजीसे मिलकर वे सुतीक्ष्णजीसे मिलते हैं, जो उन्हें ऋषि अगस्त्यके पास लेकर जाते हैं। ऋषि अगस्त्य उन्हें दण्डकारण्य पंचवटीमें भेज देते हैं। दण्डकारण्यमें सीताहरणके बाद वे शबरीके पास पहुँचते हैं। शबरी उन्हें सुग्रीवके पास भेज देती हैं। सुग्रीव उन्हें अपनी सेनाके साथ लंका ले जाते हैं और लंकाके राजा विभीषण भी उन्हें भरतके पास अयोध्या भेज देते हैं। इस तरह श्रीरामसे प्रेम करनेवाले हर व्यक्ति उनसे प्रेम पाकर स्वयंको धन्य करते हैं; साथ ही उनके प्रेमका दूसरोंतक विस्तार करते हैं।

८-श्रीराम अपने प्रेम करनेवालोंको सामर्थ्यवान् एवं आत्मनिर्भर बनाते हैं। जिन्हें भी एक बार श्रीरामका प्रेम मिल जाता है, बादमें उन्हें और कुछ पानेकी इच्छा शेष नहीं रह जाती। श्रीराम अपने प्रेम करनेवालोंको इतना पूर्ण बना देते हैं कि उन्हें बादमें श्रीरामकी प्रत्यक्ष उपस्थिति या सान्निध्यकी भी आवश्यकता नहीं होती। वह व्यक्ति राममय हो जाता है एवं अपने शेष जीवनमें श्रीरामकी नित्य उपस्थितिकी अनुभूति करता है।

९-रामके प्रेमके अद्वितीय प्रभावको हनुमान्जीके व्यक्तित्वके माध्यमसे भी आसानीसे समझा जा सकता है। हनुमान्जी बल, बुद्धि एवं विद्याके निधान हैं। लेकिन उन सबका प्रभावी उपयोग करनेका सामर्थ्य वे श्रीरामसे प्राप्त करते हैं। श्रीरामके प्रेमके कारण ही वे जगमें संकटमोचकके नामसे ख्याति प्राप्त करते हैं। श्रीराम अपने सान्निध्य एवं प्रेमसे हनुमान्जीको अपने समान ही तेजस्वी बनाते हैं। आज हनुमान्जीका श्रीरामसे स्वतन्त्र स्वयंका एक विशिष्ट अस्तित्व है। आज वे जगभरमें श्रीरामके समान ही भगवान्के रूपमें पूजे जाते हैं।

इस तरह श्रीरामका प्रेम लोगोंको मोह एवं आसक्तिसे दूर करके एक पूर्ण एवं सामर्थ्यवान् व्यक्ति बनाता है। हम सबको भी सकारण प्रेमका अभ्यास है। इसलिये मनमें कारण लेकर प्रेम करना हो तो श्रीरामजीसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है। श्रीरामका प्रेम अमोघ है। वह कभी निष्फल नहीं होता।

श्रीराम कृपालु हैं। उन्हें केवल प्रेम ही प्यारा है।

'मोह छाँड़ मन मीत'

(श्रीभगवानलालजी शर्मा 'प्रेमी')

एक वैश्यने लाखों-करोड़ों रुपये कमाये और अपने धनमेंसे चार-चार लाख रुपये अपने पुत्रोंको देकर, उनको अलग-अलग दूकानें करवा दीं। शेष धन उसने दीवारोंमें चुनवा दिया। चन्द रोजके बाद वह गम्भीररूपसे बीमार हो गया। उसे सन्निपात हो गया और वह आन-तान बकने लगा। लोगोंने उसका अन्त समय समझकर उससे कहा—'सेठजी! बहुत धन कमाया है, इस वक्त कुछ पुण्य कीजिये, क्योंकि इस समय धर्म ही साथ जायगा। स्त्री-पुत्र-धन प्रभृति साथ न जायँगे।' वैश्यका गला बन्द हो गया था, अतः वह बोल न सकता था। उसने बारंबार दीवारोंकी तरफ हाथ किये। इशारोंसे बताया कि इन दीवारोंमें धन गड़ा है, उसे निकालकर पुण्य कर दो। पुत्र पिताका मतलब समझकर बोले—'पिताजी कहते हैं, जो धन था, सो तो इन दीवारोंमें लगा दिया, अब और धन कहाँ है?' लोगोंने लड़कोंकी बात मान ली। वैश्य अपने पुत्रोंकी बेईमानी देखकर बहुत रोया, पर बोल न सकता था, इसलिये छटपटा-छटपटाकर मर गया। लड़कोंने उसे श्मशानमें ले जाकर जला दिया। वैश्यके मनकी मनमें ही रह गयी। इससे बढ़कर पुत्रोंकी शत्रुता क्या होगी?

कई लोग सैकड़ों प्रकारके अनर्थ और बेईमानीसे पराया धन प्राप्तकर अथवा और तरहसे दुनियाका गला काटकर लाखों-करोड़ों रुपया औरोंके लिये छोड़ जाते हैं, वे इस कहानीसे शिक्षा ग्रहण करें कि धनका झूठा मोह त्यागें। इस जगत्‌में न कोई किसीका पुत्र है, न पिता। माता-पिता, भाई-बहन और स्त्री-पुत्र सभी एक लम्बी यात्राके यात्री हैं। यह मृत्युलोक उस यात्राके बीचका मुकाम है। इस मुकामपर आकर सब इकट्ठे हो गये हैं। कोई किसीसे सच्ची प्रीति नहीं रखता। सभी स्वार्थकी रस्सीमें एक-दूसरेसे बँधे हुए हैं। जब जिसके चलनेका समय आ जाता है, तभी वह निर्मोहीकी तरह सब छोड़कर चल देता है। जो लोग उस चले जानेवाले या मर जानेवालेके लिये प्राण न्योछावर करते थे, उसके लिये मरनेतकको तैयार थे, उनमेंसे कोई उसके साथ घरकी देहलीतक जाता है और कोई श्मशान-भूमितक पहुँचाकर और जलाकर खाक कर आता है। ऐसे नातेदारोंसे अनुराग करना, उनमें ममता रखना बड़ी ही गलती है। कहा है—परलोककी राहमें जीव अकेला जाता है। केवल धर्म उसके साथ जाता है। धन-दौलत, मकान, खेत, कुआँ, पशुधन और सभी परिजन यहाँ ही रह जाते हैं। लोग श्मशानतक जाते हैं और देह चितातक साथ रहती है।

बहुत लोग यह समझते हैं कि पुत्रके बिना गति नहीं होती। पुत्रहीन पुरुष नरकमें जाता है और पुत्रवान् स्वर्गमें जाता है। जो लोग ऐसा समझते हैं, वह बड़ी भूल करते हैं। पुत्रोंसे किसीकी भी गति न तो हुई और न होगी, सबकी गति अपने ही पुरुषार्थसे होती है। अगर पुत्रोंसे स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्ति होती तो कोई बिरला ही नरकमें जाता। जो जैसा करता है, उसे वैसा ही फल भोगना होता है। ब्रह्म-हत्या, भ्रूण-हत्या, परस्त्रीगमन और पर-धन-हरण प्रभृति पापोंका फल कर्ताको भोगना ही होता है। जो ऐसा समझते हैं कि पाप करनेपर भी पुत्र-पौत्रके होनेसे हम दण्डसे बच जायँगे, वे बड़े ही मूर्ख हैं। ज्ञानी लोग तो संसार-बन्धनसे छूटनेके लिये अपने पुत्रोंका भी त्याग कर देते हैं।

किसी नगरमें एक ब्राह्मण रहता था। उसके पुत्र नहीं हुआ था, इसलिये उसने गंगाजीकी उपासना की। अन्तमें बूढ़ी अवस्थामें उसके एक अन्धा पुत्र हुआ। ब्राह्मण उस अन्धे पुत्रको पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने खूब उत्सव और भोज प्रभृति किये। इसके बाद जब वह अन्धा पुत्र पाँच बरसका हुआ तो ब्राह्मणने उसका यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर उसे विद्या पढ़ाना आरम्भ किया। चन्द रोजमें वह अन्धा पूर्ण पण्डित हो गया।

एक दिन पिता-पुत्र बैठे थे। पुत्रने पितासे पूछा—पिताजी, मनुष्य अन्धा किस पापसे होता है? पिताने उत्तर दिया—पुत्र, जो पूर्वजन्ममें रत्नोंकी चोरी करता है, वह

अन्धा होता है। पुत्रने कहा—पिताजी! यह बात नहीं। कारणके गुण कार्यमें भी आ जाते हैं। आप अन्धे हैं। इसीसे मैं अन्धा हुआ हूँ। पिताने क्रोधमें भरकर कहा, नालायक! मैं अन्धा कैसे? पुत्रने कहा—'पिताजी, गंगामाता साक्षात् मुक्ति देनेवाली हैं। आपने उनकी उपासना पुत्रकी कामनासे की। इसीसे मैं आपको अन्धा समझता हूँ। जो वेद-शास्त्र पढ़कर भी पेशाबके कीड़ेकी इच्छा करता है, वह अन्धा नहीं तो क्या है?' पेशाबसे जैसे अन्य अनेक प्रकारके कीड़े पैदा होते हैं, वैसे ही पुत्र भी उसका एक कीड़ा ही है। आपने जिस पुत्रके लिये गंगाजीकी इतनी तपस्या की, वह पुत्र तो कुत्ते-बिल्ली और सूअर प्रभृति पशुओंके अनायास ही हो जाते हैं। पुत्र-जैसे मूत्रके कीड़ेसे किसीको भी स्वर्ग या मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती। पिताजी, न कोई किसीका पुत्र है, न कोई स्त्री, सब एक ही हैं; क्योंकि सबमें एक ही आत्मा है, वही आत्मा पितामें है, वही पुत्र और वही स्त्रीमें। जिस तरह मरुभूमिमें भ्रमसे जल दिखता है, पर वास्तवमें वहाँ जलका नाम-निशान भी नहीं, उसी तरह भ्रमसे यह जगत् सच्चा दिखता है, पर वास्तवमें कुछ भी नहीं। यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा धन है, यह मेरा मकान है—ऐसा वासनासे दिखता है। वासनासे ही जीव बन्धनमें बँधता है, यानी वासनासे ही शरीर धारण करता है। वासनासे ही मनुष्य अज्ञानी बन रहा है। वासनाका त्याग करते ही मनुष्य ज्ञान-लाभ करके, परमानन्दकी प्राप्ति करता है। जिस तरह ज्ञानी सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मको ज्ञानकी आँखोंसे देखता है, उसी तरह अज्ञानीको ब्रह्म नहीं दिखता। इसीसे अज्ञानीको बाहरकी आँखें होनेपर भी अन्धा कहते हैं। आप भेद-बुद्धिको त्यागकर, सबमें एक आत्माको देखिये। आत्मज्ञानी होनेसे ही आपको नित्य सुख मिलेगा।

पुत्रके अगाध पाण्डित्य और ज्ञानको देख पिता एकदम चकित हो गया और कहने लगा—'पुत्र! मैंने चार वेद, छहों शास्त्र, उपनिषद्, स्मृति और पुराण प्रभृति पढ़कर कुछ भी ज्ञानलाभ न किया। तेरी बातोंसे मेरी आँखें खुल गयीं।'

संसारको मिथ्या समझकर ही कोई ज्ञानी कहता है—

'हे मन! तू स्त्रीके प्रेममें मत भूल। यह बिजलीकी चमक, नदीके प्रवाह और नदीकी तरंगकी तरह चंचल है। स्त्रीके प्रेमका कोई ठिकाना नहीं। आज यह तेरी है, कल परायी है। एक करवट बदलनेमें स्त्री परायी हो जाती है। इसकी झूठी प्रीतिमें कोई लाभ नहीं।' गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

उरग तुरँग नारी नृपति नर नीचो हथियार।
तुलसी परखत रहब नित इनहिं न पलटत बार॥

सर्प, घोड़ा, स्त्री, राजा, नीच पुरुष और हथियार—इनको सदा परखते रहना चाहिये, इनसे कभी गाफिल न रहना चाहिये, क्योंकि इन्हें पलटते देर नहीं लगती।

हे मन! यदि तुझे प्रीति ही करनी है, तो उठ, गंगा-किनारेके वृक्षोंके नीचे चलकर बैठ और आशुतोष भगवान् चन्द्रशेखर शिवजीसे प्रीति कर। उनकी प्रीति सच्ची और कल्याणकारी है।

मोह छाँड़ मन मीत! प्रीति सों चंद्रचूड़ भज।
सुर सरिता के तीर, धीर धर दृढ़ आसन सज॥
शम दम भोग विराग, त्याग तप को तू अनुसरि।
वृथा विषय बकवाद, स्वाद सब ही तू परिहरि॥
थिर नहीं तरंग बुदबुद तडित अगिन शिखा पन्नग सरित।
त्योंही तन जोबन धन अथिर, चल दलदल कैसे चरित॥

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

कै ममता करु रामपद, कै ममता करु हेल।
तुलसी द्वै महँ एक अब, खेल छाँड़ि छल खेल॥
सम्मुख ह्वै रघुनाथ के, देहु सकल जग पीठ।
तजै केचुरी उरग कहँ, होत अधिक अति दीठि॥

या तो भगवान्के चरणोंमें ममता कर अथवा देहके सब नातोंको त्यागकर उदासीन हो जा और कर्म-ज्ञानादि साधन करके मन शुद्ध कर ले। जब तेरा मन शुद्ध हो जायगा, तब भगवान्के चरणोंमें आप ही स्नेह हो जायगा। इन दोनों बातोंमेंसे जो एक बात तुझे पसन्द हो, उसे छल छोड़कर दिलसे कर, एक खेल खेल। सारांश यह कि भगवान्में सहज स्नेह कर। अगर तेरा मन प्रभुकी भक्तिमें नहीं जमता, तो स्त्री-पुत्र आदि संसारी भोगोंसे मन हटाकर

प्रभुकी भक्तिकी चेष्टा कर।

जब भगवान्‌में तेरा मन लग जाय, तब संसारकी तरफसे मुँह फेर ले—संसारको पीठ दे दे, जिससे तेरे मनमें लोक-वासना न आने पाये; क्योंकि वासनासे हृदयकी दृष्टि मैली हो जाती है। साँपका भीतरी चमड़ा जब मोटा हो जाता है, तब उसे आँखोंसे साफ नहीं दीखता। लेकिन जब वह काँचली छोड़ देता है, तब उसकी आँखोंका पटल उतर जाता है, आँखोंके साफ हो जानेसे साँपको खूब साफ दिखने लगता है। जिस तरह काँचली त्यागनेसे सर्पकी दृष्टि साफ हो जाती है, उसी तरह वासना त्याग देनेसे ईश्वरके भक्तोंकी हृदय-दृष्टि साफ रहती है और उन्हें भगवान्‌के दर्शन होते रहते हैं।

आराधनाकी पगडण्डियाँ

(श्रीसुरेशजी शर्मा)

जिस प्रकार योगासन, सूर्य-नमस्कार एवं सात्त्विक आचार-विचारसे हमारा अन्नमय कोश (शरीर) सशक्त होता है, प्राणायामसे प्राणमय कोश (श्वसन-प्रणाली) सशक्त होती है, उसी प्रकार हमारे मनोमय कोश (मन एवं चित्त)-को सशक्त बनानेके लिये आराधना एवं उपासनाकी आवश्यकता होती है। आराधनाकी अनेक विधियाँ हैं। जिस प्रकार हम अपने माता-पिता, गुरुजन एवं सन्त-महात्माओंको प्रणामकर उन्हें प्रसन्नकर आयु, बल, बुद्धि एवं यशकी वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार हम नौ ग्रह, देवी-देवताओंको प्रणामकर उन्हें प्रसन्न करते हैं एवं उनकी कृपा एवं आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप ‘ॐ सूर्याय नमः’, ‘ॐ नमः शिवाय’, ‘ॐ नमो भगवते वासुदेवाय’, ‘ॐ नमो नारायणाय’ **इत्यादि। यह नमस्कार-विधि लगभग सभी धर्म एवं सम्प्रदायमें है। उदाहरणस्वरूप बौद्ध-धर्ममें** ‘बुद्धं शरणं गच्छामि·····’ **जैन-धर्ममें** ‘नमो अरिहन्ताणम्’ **इत्यादि। इन्हें महामन्त्र कहा गया है। इसका एक सौ आठ, एक हजार आठ या सवा लाखका अनवरत जप एवं अनुष्ठान किया जाता है। ये मन्त्र बहुत शक्तिशाली हैं।**

आराधनाकी दूसरी पद्धतिमें उनके शतनामका या सहस्रनामका उच्चारण करके किसी ग्रह, देवता या इष्टकी उपासना करते हैं। उदाहरणस्वरूप भगवान् विष्णुके लिये विष्णुसहस्रनाम, शिवजीके लिये शिवसहस्रनाम, सूर्यके लिये सूर्यसहस्रनाम इत्यादि सहस्रनाम जगत्प्रसिद्ध हैं। आराधनाके लिये तीसरी पद्धतिमें ग्रह, देवता या इष्टकी स्तुति की जाती है। स्तुतिसे प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह हमारे शत्रुपक्षका ही क्यों न हो, प्रसन्न हो जाता है। रास्ते चलते अनजानकी स्तुति की जाय तो वह भी मित्र एवं हितैषी हो जाता है। उसी प्रकार देवताओंकी भी स्तुति की जाती है। शास्त्रोंमें इन्हें स्तोत्र भी कहा गया है। जैसे रामरक्षास्तोत्र, आदित्यहृदयस्तोत्र इत्यादि। इस प्रकार विधिवत् आराधना करनेसे देवता प्रसन्न होते हैं, संकट-निवारण करते हैं एवं मनोकामनाको पूर्ण करते हैं। नियमित आराधना करनेसे हमारा मनोमय-कोश सशक्त होता है।

कुछ भक्त एवं साधक अधिक योग्यता प्राप्तकर आगे बढ़कर विशाल ग्रन्थोंका पारायण करते हैं। जैसे वेद, उपनिषद्, रामायण, रामचरितमानस, गीता, भागवतपुराण इत्यादि। विशाल ग्रन्थोंका पारायण, मनन, चिन्तन एवं स्वाध्याय अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायोंमें भी प्रचलित है। इन ग्रन्थोंके अध्ययनसे हमारा ‘विज्ञानमय कोश’ विकसित होता है।

उपर्युक्त भक्तोंमें कोई-कोई भक्त, साधक ऐसे भी होते हैं, जो निरन्तर चिन्तन, मनन, स्मरणद्वारा उच्चावस्था प्राप्त कर लेते हैं एवं आनन्दमयकोशमें प्रवेश कर जाते हैं। इस प्रकार आराधना एवं उपासनाकी यात्रा अन्नमयकोशसे आनन्दमय कोशकी यात्रा है या यों कहें शून्यसे विराट्‌की यात्रा है। दूसरे शब्दोंमें सगुणसे निर्गुणतक या साकारसे निराकारकी यात्रा है। नाम कुछ भी कहें, पर सचमें यह आत्मसाक्षात्कारसे परमात्म-साक्षात्कारकी यात्रा है, जो पूर्वजन्मोंके कर्मोंसे, गुरुकृपासे एवं ईशकृपासे प्राप्त होती है।

मातृपितृ-ऋण चुकानेका सरल मार्ग है श्राद्ध

(प्रो० श्रीराधेमोहन प्रसादजी)

गृहाच्चलितमात्रेण गयायां गमनं प्रति।
स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां च पदे पदे॥

(वायुपुराण १०५। ३१)

पुत्र अपने पिताके श्राद्धके उद्देश्यसे जितने कदम गयाक्षेत्रकी ओर चलता है, उतने ही कदम उनके पितरोंके लिये स्र्वगारोहणसोपान बन जाते हैं। वायुपुराणमें ऐसा ही कहा गया है। यही है गयाजीमें पिण्डदान करनेका महत्त्व।

कहा जाता है कि मृत्युके बाद कर्णको चित्रगुप्तने मोक्ष देनेमें असमर्थता जतायी। कर्णने कहा—'मैंने तो सारी सम्पदा सदैव दान-पुण्यमें ही समर्पित की है, इसके उपरान्त भी मेरे ऊपर यह कैसा ऋण शेष रह गया, जो मुझे मुक्ति नहीं मिल रही है।' चित्रगुप्तका उत्तर था, राजन्! आप देव-ऋण और ऋषि-ऋणसे मुक्त हो चुके हैं, पर आपके ऊपर पितृ-ऋण शेष है। जबतक आप इस ऋणसे मुक्त नहीं होंगे, तबतक आपको मोक्ष मिलना कठिन होगा। इसके बाद धर्मराजने कर्णको यह व्यवस्था दी कि आप सोलह दिनोंके लिये पुनः पृथ्वीपर जाइये तथा अपने ज्ञात और अज्ञात पितरोंका श्राद्धतर्पण विधिवत् करके आइये, तभी आपको मोक्ष यानीकी प्राप्ति होगी और कर्णने फिर ऐसा ही किया।

माता-पिताके ऋणसे मुक्त होना सम्भव नहीं है; क्योंकि माता-पिता जो कुछ अपने सन्तानके लिये करते हैं, उसको आँकना सम्भव नहीं है। इसलिये उनका स्नेह उनका समर्पण, उनकी देन अतुलनीय है और पितृपक्षमें उन्हें स्मरणकर उनके लिये पूजा-अर्चना करना हमारी सांस्कृतिक परम्परा है, जिससे हमें सुख एवं सन्तुष्टि प्राप्त होती है। इसीलिये मानवीय मर्यादाओंमें पितरोंका श्राद्धादिक कर्म करना आवश्यक है। शास्त्रोंमें तभी तो कहा गया है।

तर्पणन्तु शुचिः कुर्यात् प्रत्यहं स्नातको द्विजः।
देवेभ्यश्च ऋषिभ्यश्च पितृभ्यश्च यथाक्रमम्॥

अर्थात् अत्यधिक शुद्धताके साथ देव, ऋषि तथा पितरोंका तर्पण करना चाहिये। इसीलिये पितृपक्षके अवसरपर उन्हें श्राद्धकर्मके द्वारा सन्तुष्ट करनेसे सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। आश्विनमासके पितृपक्षमें पितरोंको आशा लगी रहती है कि उनके पुत्र-पौत्रादि पिण्डदान तथा तिलांजलि प्रदानकर उन्हें सन्तुष्ट करेंगे। इसी आशासे वे पितृलोकसे पृथ्वीलोकपर आते हैं। अगर उन्हें यह सब नहीं मिलता, तो वे न केवल निराश लौटते हैं, बल्कि क्रोधावेशमें शापतक दे देते हैं।

""पितरस्तस्य शापं दत्त्वा प्रयान्ति च। (नागरखण्ड)

ब्रह्मपुराणमें वर्णन आता है कि मृत प्राणी बाध्य होकर श्राद्ध न करनेवाले अपने सगे-सम्बन्धियोंका रक्त चूसने लगता है—

श्राद्धं न कुरुते मोहात् तस्य रक्तं पिबन्ति ते।

(ब्रह्मपुराण)

शास्त्रसम्मत जो बातें हैं, उसके अनुसार जिस प्रकार काशीमें व्यक्तिकी मृत्यु होनेपर उसे 'सायुज्य मोक्ष' की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार गयामें मृतात्माको पिण्डदानादि कर देनेसे उन्हें 'ऊर्ध्वगति' की प्राप्ति होती है।

श्राद्ध, तर्पण एवं पिण्डदानकी परम्परा गयामें कबसे प्रारम्भ हुई, इसके पीछे काफी मत-मतान्तर हैं। आदि वैदिक युगमें जब शवदाहकी परम्परा प्रचलित नहीं थी, तो लोग शवको देश-भूमिमें समाधि दे दिया करते थे, किंतु वैदिक कालमें सिर्फ शवदाहकी ही परम्परा थी। हालाँकि उस युगमें भी कहीं-कहीं दाह और समाधि, इन दोनों ही परम्पराओंका उल्लेख मिलता है। निष्कर्षतः भारतमें दाह-कर्मके प्रचलनके साथ ही वैदिक पितृपिण्डदानकी परम्परा शुरू हुई।

जहाँतक श्राद्ध, पिण्डदान एवं तर्पणके पीछे छिपी वैज्ञानिकताका प्रश्न है, उसके अनुसार इन दिनों (पितृपक्षविशेष अवधिमें) चन्द्रमा अन्य महीनोंकी अपेक्षा पृथ्वीके काफी निकट हो जाता है। इस कारण उसकी आकर्षणशक्तिका प्रभाव पृथ्वी तथा उसमें अधिष्ठित

प्राणियोंपर विशेष रूपसे पड़ता है। तब जितने सूक्ष्म शरीरयुक्त जीव चन्द्रलोकके ऊपरी भागमें स्थित 'पितृलोक'में जानेके लिये बहुत समयसे चल रहे होते हैं या चल पड़ते हैं, उनके उद्देश्यसे उनके सम्बन्धियोंद्वारा प्रदत्त पिण्ड अपने अन्तर्गत सोमके अंशसे उन जीवोंको आप्यायित करके, उनमें विशिष्ट शक्ति उत्पन्न करके उन्हें शीघ्र और अनायास ही अर्थात् बिना अपनी सहायताके ही 'पितृलोक' में उपलब्ध करा देता है। तब वे पितर भी उनकी ऐसी सहायता पाकर उन्हें हृदयसे समृद्धि तथा वंशवृद्धिका आशीर्वाद देते हैं।

आश्विनमासके कृष्णपक्षकी मृतक तिथिमें यहाँ सभी मृतक पितरोंके श्राद्ध किये जाते हैं। प्रतिवर्ष आश्विनमास एवं तिथिमें जो श्राद्ध किये जाते हैं, उसके पीछे भी कारण यह है कि वह तिथि होती है चन्द्रमासकी। चन्द्रगतिके अनुसार उस समय चन्द्रलोकमें वे पितर उसी मार्गमें स्थित होते हैं, जब वे उसी तिथिमें मरकर मार्गको प्राप्त हुए थे। तब वे सूक्ष्माग्निसे प्राप्त कराये हुए उस श्राद्धके सूक्ष्मांशको अनायास प्राप्त कर लेते हैं।

अब श्राद्ध-सामग्रीपर ही विचार करें तो श्राद्धके समय पृथ्वीपर जो कुश रखे जाते हैं और कुशोंपर फूल, फल एवं अक्षत आदिके पिण्ड प्रदान किये जाते हैं, उसके पीछे भी एक अलग विज्ञान छिपा है।

चावल और जौमें ठंडी बिजली होती है तथा तिल और दूधमें गरम बिजली होती है। जबकि तुलसीमें इन दोनों ही प्रकारकी बिजली मौजूद होती है। जब कोई वेदविद्, कर्मकांडी तथा ज्ञानी विद्वान् अपने नियत पद-प्रयोग परिपाटीवाले तथा नियमके अनुसार पितृगणोंसे सम्बद्ध वेद-मन्त्रोंको पढ़ता है, तब नाभिचक्रसे समुत्थित वायु पुरुषके शरीरमें एकाएक उष्ण विद्युत् उत्पन्न करके उस शरीरसे अलौकिक वैदिक क्रियासिद्ध विद्युत् भी पिण्डोंमें प्रवेश करता है।

यों तो श्राद्धके सम्बन्धमें हमारे धर्मशास्त्रोंमें बहुत कुछ लिखा गया है। श्राद्धकर्ममें जहाँ सुपात्र ब्राह्मणको भोजन करानेकी व्यवस्था है, वहीं उसकी भोजन-सामग्रीपर भी विशेष ध्यान दिया गया है।

विष्णुपुराणके अनुसार श्राद्धकालमें भक्ति और विनम्र चित्तसे उत्तम ब्राह्मणोंको यथाशक्ति भोजन कराना अनिवार्य माना गया है। असमर्थ होनेपर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कच्चा धान्य और थोड़ी दक्षिणा भी दे देनेसे यह क्रिया सार्थक हो जाती है। यदि उसमें भी असमर्थ हों, तो केवल आठ तिलोंसे ही श्रद्धांजलि दी जा सकती है। यदि यह भी न हो सके, तो कहींसे गौका चारा लाकर श्रद्धा और भक्तिपूर्वक गौको खिला देनेसे श्राद्धका फल प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त सभी वस्तुओंके अभावमें सिर्फ एकान्तमें खड़े होकर श्रीसूर्य आदि दिक्पालोंसे हाथ उठाकर अपनी असमर्थता और अपने पितरोंके प्रति अगाध श्रद्धा निवेदित कर देनेसे भी श्राद्धका कर्म सफल मान लिया जाता है।

ने मेऽस्ति वित्तं न धनं च नान्य-
च्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितॄन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ
कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥

श्राद्धकर्ममें चावल-दूध और तिलको मिलाकर जो पिण्ड बनाते हैं, उसे 'सपिण्डीकरण' कहते हैं। पिण्डका अर्थ है शरीर। यह एक पारम्परिक विश्वास है, जिसे विज्ञान भी मानता है कि प्रत्येक पीढ़ीके भीतर मातृकुल तथा पितृकुल दोनोंमें पहलेके पीढ़ियोंके समन्वित 'गुणसूत्र' उपस्थित होते है। चावलके पिण्ड जो पिता, दादा, परदादा और पितामहके शरीरोंका प्रतीक हैं, उन्हें आपसमें मिलाकर फिर अलग बाँटते हैं। यह प्रतीकात्मक अनुष्ठान जिन-जिन लोगोंके गुणसूत्र श्राद्ध करनेवालेकी अपनी देहमें है, उनकी तृप्तिके लिये होता है। श्राद्ध उस सन्तुष्टिकी प्राप्तिका माध्यम है और श्राद्धपक्षमें अपने पूर्वजोंके लिये अपनी सामर्थ्यके अनुसार जो भी कर पाते हैं, उसमें कहीं-न-कहीं हमारी आत्माको भी सन्तुष्टि प्राप्त होती है।

सुन्दरकाण्डमें हनुमान्—निष्काम कर्मयोगी

(डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी अग्रवाल)

प्रतीकात्मक स्तरपर सुन्दरकाण्ड मानव-जीवनके आध्यात्मिक उत्थानहेतु कलिमलहरनि मन्दाकिनी है और राक्षसी प्रवृत्तियोंके विनाशकी भविष्यवाणी है, परंतु विषयात्मक स्तरपर यह हनुमान्की श्रीराम-भक्तिमें समर्पित इच्छाशक्ति एवं पुरुषार्थ-विजयकी हृदयस्पर्शी एवं प्रेरणाप्रद शौर्य-गाथा है। सुन्दरकाण्डके नायक सिर्फ-और-सिर्फ श्रीरामभक्त हनुमान् हैं, जो सकलगुणनिधान होनेपर भी अभिमानशून्य, निष्काम कर्मयोगी एवं निष्काम श्रीरामभक्त हैं। हनुमान्जीकी सफल लंका-यात्राकी कथा मानव-जातिके लिये गीताज्ञान तथा व्यावहारिक जीवन-कला दोनोंके लिये प्रेरणास्रोत है। सुन्दरकाण्ड हनुमान्के जोखिमभरे राम-कार्यका नाटकीय काव्यखण्ड है, इसलिये वस्तुतः सुन्दरकाण्ड हनुमान्काण्ड ही है। **'अतुलित-बलधामं'** एवं ***'बुधि बिबेक बिग्यान निधाना'*** होनेके बावजूद हनुमान्में कर्तापनका लेशमात्र भी भाव नहीं है। हनुमान् कभी कर्ता-भावमें नहीं, हमेशा निष्काम-क्रिया-भावमें मग्न रहते हैं।

श्रीराम-दूत बन हनुमान्की लंका-यात्रा

सम्पाती गीधके द्वारा सीताको लंकाके अशोक-वाटिकामें होनेका पता बतानेके बाद विकट समस्या वहाँ समुद्र पारकर सीताका पता लगानेका है। सभी वानर चुप-शान्त हैं। हनुमान्को अपनी शक्ति तथा बुद्धिका पूर्ण ज्ञान है, लेकिन वे स्वयंके बारेमें बोलना उचित नहीं समझते। अनुभवी तथा ज्ञानी जामवन्त हनुमान्की ओर देखकर प्रश्नवाचक मुद्रामें कहते हैं, ***'का चुप साधि रहेहु बलवाना॥'*** वे हनुमान्को जगाने एवं प्रेरित करनेके लिये दो महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ उन्हींके बारेमें देते हैं—पहला

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

और दूसरा ***'राम काज लगि तव अवतारा।'*** इतना सुन हनुमान्का 'पर्वताकार' होना वहाँ एकत्रित संशय एवं अनिश्चितताभरे वानरोंको लंका-यात्राके लिये स्वयं तैयार होने तथा प्रभुके कार्यकी सफलताका भरोसा देनेका सफल संकेत है, शक्ति-प्रदर्शन नहीं।

लंका-यात्रामें हनुमान् श्रीराम-सेवाकी भावनाओंसे ओत-प्रोत हैं और राम-कार्यको पूर्ण करना ही उनके जीवनका परम उद्देश्य है। इसलिये वे ***'चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥'*** उनके ***'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम'*** के कथनमें समर्पणका भाव है। सुरसा जब हनुमान्को अपना आहार समझ रोकना चाहती है, वे ***'राम काजु करि फिर मैं आवौं'*** का भरोसा देते हैं। सुरसा भी हनुमान्को सक्षम जानकर प्रभुके कामको पूरा करनेका आशीर्वाद देती है, ***'राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।'***

हनुमान्का बल हमेशा बुद्धि-नियन्त्रित है। यों तो रावण भी बल-बुद्धिकी खान है, लेकिन रावणका बल बुद्धिपर हावी रहता है। बुद्धिसे अनियन्त्रित बल व्यक्तिको अन्ध नकारात्मकता एवं विनाशकी ओर ले जाता है। हनुमान्को पूर्ण पता है कि बलका प्रयोग क्यों, कब, कितना, कहाँ और कैसे करना चाहिये। श्रीराम-प्रदत्त अन्तरात्माकी आवाज ही उनके बल-प्रयोगमें मार्गदर्शक रहती है।

लंका-यात्रामें सुरसाके साथ हनुमान् अपने बल-बुद्धिका प्रयोग काफी समझदारी तथा होशियारीसे करते हैं। वे सुरसाको **'माई'** सम्बोधितकर मातृ-भाव पैदाकर अपनी यात्रा आसान करना चाहते हैं। सुरसाको दुगुना ताकतका बोध कराना बल-प्रदर्शन नहीं, लघुरूप हो सुरसाके मुखसे निकल जाना भी बुद्धि-प्रदर्शन नहीं, बल्कि राम-कार्यको सफल करनेकी सफल युक्ति है। बल और बुद्धि—दोनोंमें आवश्यकतानुसार लचीलापन हनुमान्के चरित्रकी विशेष विशेषता है और लंका-यात्राकी सफलताके लिये आवश्यक भी है। यहाँ भी हनुमान्में कर्ता-अभिमान-भाव नहीं, श्रीरामके प्रति समर्पित सेवा-भाव है। लेकिन समुद्री राक्षसी जब छल-कपटकर हनुमान्को पक्षियोंकी तरह फँसाना चाहती है, तो हनुमान् बल-प्रयोगसे उसका विनाशकर तुरन्त समुद्र पार चले जाते हैं। उसी तरहसे लंकिनी नामक राक्षसी, जो हनुमान्को अपना आहार समझती है, उसपर वे घूँसेका प्रहारकर उसे असहाय कर देते हैं।

विभीषणसे मुलाकातमें हनुमान्‌की राजनयिक व्यवहार-कुशलता

विद्यावान्, गुणी, अतिचातुर हनुमान्‌को श्रीराम-नामके उच्चारणके साथ जागते हुए विभीषण सन्त-सज्जन लगते हैं। ब्राह्मणरूपमें वे उनसे आत्मीयतासे मिलते हैं। विभीषणके लिये भी हनुमान् श्रीराम-कृपाप्रदत्त सन्त हैं। विनम्रता तथा शालीनताकी मूर्ति हनुमान् स्वयंको नीच, अस्तित्वहीन तथा ऐसा अधम बताते हैं, जिसका सुबहमें नाम लेनेपर भोजन भी नसीब नहीं होता। हालाँकि यह उनका बड़प्पन है, वास्तविकता नहीं। विभीषणको 'भ्राता' और जानकीको 'माता' कह सीता-खोजमें विभीषणको भी बराबरके भागीदार बनाना चाहते हैं। यहाँ हनुमान्‌की वाणीमें अपनापनके साथ सफल राजनयिकता भी है।

सीता-हनुमान्-मिलन—दुखी माँ एवं बेचैन पुत्रकी मुलाकात

दुखी, असहाय तथा बेचैन सीताको देख हनुमान्‌जी काफी विचलित हो जाते हैं। ***'परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन'***। लेकिन हनुमान्‌को समय और जगहका पूर्ण ज्ञान है। बल-बुद्धिनिधान होनेके बाद भी वे धैर्य नहीं खोते। जब त्रिजटा चली जाती हैं और सीता अकेली हो जाती हैं, तब हनुमान्‌जी श्रीरामकी अँगूठी गिरा देते हैं। अँगूठीको मायावी होनेके सीताके सन्देहपर हनुमान्‌जी अशोक वृक्षसे नीचे आ जाते हैं और श्रीरामके सेवकके रूपमें अपना परिचय देते हैं। ***'सुनतहिं सीता कर दुख भागा।'*** यहाँ हनुमान्‌का प्रथम कार्य सीतामें अपनेको श्रीरामदूत होनेका विश्वास पैदा करना है। ***'कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।'*** हनुमान्‌का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य बेचैन तथा असहाय सीतामें श्रीरामके लौटनेतक धैर्य पैदा करना है; क्योंकि वे सीताकी त्रिजटासे आत्मदाह करनेकी बात सुन चुके हैं। वे कहते हैं, ***'रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।'*** यहाँ हनुमान् बहुत ही संवेदनशीलता तथा मनोवैज्ञानिक कुशलतासे सीताको आश्वस्त करते हैं, ***'मातु कुसल प्रभु अनुज समेता, तव दुख दुखी सुकृपा निकेता'*** और पुनः ***'तुम्ह ते प्रेम राम के दूना'*** यानी श्रीरामका दुःख आपके दुःखसे दुगुना है। हनुमान्‌की बातोंपर सीताको पूर्णरूपेण विश्वास हो जाता है, ***'प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥'***

सीताके सामने हनुमान्‌का 'भूधराकार' होना बल अथवा अहंकार-प्रदर्शन नहीं है। सीताको श्रीरामद्वारा हनुमान्‌के समान छोटे-छोटे वानरोंके साथ लंकापर विजय पानेमें सन्देह होता है, इसी सन्देहको दूर करनेके लिये तथा श्रीरामकी शक्तिपर भरोसा जगानेके लिये हनुमान् सुमेरु पर्वतके समान विशाल रूप ले लेते हैं। वे यह भी स्पष्ट करना नहीं भूलते कि वानरोंमें बल-बुद्धि नहीं होती, पर श्रीरामके प्रतापसे छोटा साँप भी गरुड़को खा जाता है।

फल खानेकी चाह रावणसे मिलनेकी युक्तिमात्र है

हनुमान्‌को फल खानेकी चाह भूखसे प्रेरित नहीं है। दुखी सीताका ध्यान हटाना एवं श्रीराम-भक्तिके प्रतापका एक और परिचय देना है। सीताके द्वारा भयंकर राक्षसोंसे बागकी रखवालीकी बात कही जानेपर हनुमान् आश्वस्त हो कहते हैं, ***'तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥'*** हनुमान्‌के बल एवं बुद्धिको जानकर सीताने ***'रघुपति चरन हृदयँ धरि'*** फल खानेकी आज्ञा दे देती हैं। वस्तुतः फल खाना तथा पेड़ तोड़ना तो एक बहाना है। मेघनादके ब्रह्मास्त्रमें बँधना भी हनुमान्‌के लिये राम-काज ही है। शंकरजी पार्वतीसे कहते हैं, ***'प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा'*** इन्हीं कार्योंके कारण ही वे रावणके पास जानेमें सफल हो जाते हैं।

रावणको श्रीरामका शान्ति एवं शक्ति-सन्देश

सरलहृदय हनुमान्‌जी रावणको अपना परिचय उन श्रीरामके दूतके रूपमें देते हैं, जिनकी पत्नीको वह छल-कपटसे हरकर ले आया है। हनुमान्‌जी जानते हैं कि यहाँ प्रारम्भमें उनके लिये आक्रामक होना ही बचाव है। रावणको हतोत्साहित करनेके लिये युद्धमें बालिने उसके साथ क्या किया, इसकी छोटी-सी चर्चा कर देते हैं। साथ ही बहुत ही सरलताके साथ कहते हैं कि उन्होंने भूख के कारण फल खाये और बन्दर स्वभावके कारण पेड़ तोड़े। यह भी स्पष्ट करते हैं कि वे श्रीरामके कार्यके प्रति समर्पित हैं, इसलिये उसे मेघनादके ब्रह्मास्त्रमें

बँधनेसे कोई शर्म नहीं आयी, *'मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥'*

हनुमान्‌को ब्रह्मास्त्रमें बँधे होनेके बाद भी रावणके सामने कोई भय नहीं है, जिसकी सुरक्षा प्रभु राम करें, उसे भय कैसा! हनुमान्‌जी जानते हैं कि जबतक रावण अपने घमण्ड-भावका त्याग नहीं करता, श्रीरामके शान्ति-सन्देशका असर नहीं होगा। फिर भी अपनी राजनयिक कुशलताका परिचय देते हुए हाथ जोड़कर श्रीरामका शान्ति-सन्देश देते हैं कि वह अपना अहंकार तथा अनीतिपूर्ण व्यवहार त्यागकर सीताको श्रीरामके पास लौटा दे और स्वयं लंकापर एकछत्र राज्य करता रहे, *'लंका अचल राजु तुम्ह करहू।'*

ज्योंही रावण अनसुनी करता है, हनुमान्‌जीकी भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तथा नीतिमिश्रित हितकी बातोंको हँसकर लेता है, हनुमान्‌जी गम्भीर हो जाते हैं और श्रीरामका शक्ति-सन्देश चेतावनीभरी वाणीमें देने लगते हैं *'सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥'* इसलिये हनुमान्‌जीकी सात्त्विक सलाह है, *'मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान'* और श्रीरामके शरण होकर अपना कल्याण करें; क्योंकि *'राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥'*

हनुमान्‌को अपनी पूँछमें आग लगानेका रावणका निर्णय सुन प्रसन्नता होती है, *'भइ सहाय सारद मैं जाना॥'* क्योंकि अब उनका काम आसान होनेवाला है। आग लगते ही हरि-प्रेरित उनचासों पवन चलने लगते हैं और हनुमान् श्रीरामका नाम ले अट्टहास करते हुए लंकाको जला श्रीरामका शक्ति-सन्देश देनेमें सफल हो जाते हैं।

सीता-दूत बन प्रभु श्रीरामके पास लौटना

हनुमान् श्रीराम-दूत बन लंका जाते हैं, परंतु लंका-दहनके बाद वे सीता-दूत बन लंकासे लौटते हैं। वे केवल सीताकी चूड़ामणिके वाहक नहीं, उनकी व्याकुलता, अकेलापन तथा श्रीरामविहीन अनाथ जीवनकी दुखी भावनाओंके भी वाहक हैं। हनुमान् संवेदनशीलता एवं कुशलताके साथ सीताके अश्रुपूरित सन्देश *'सीता कै अति बिपति बिसाला'* श्रीरामके पास पहुँचाते हैं और बताते हैं कि कैसे राम-विरहमें सीता असहाय एवं प्राणविहीन हो गयी हैं। हनुमान्‌का यह सन्देश श्रीरामको दुःख-विह्वल एवं बेचैन कर देता है। *'सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना॥'*

हनुमान् राम-काजका श्रेय स्वयं नहीं लेते हैं

'करि आए प्रभु काज' के बाद सभी वानर खुश हो जाते हैं। सुग्रीव श्रीरामसे कहते हैं *'नाथ काजु कीन्हेउ हनुमाना'* जामवन्त भी श्रीरामको ही कर्ता मान कहते हैं, *'प्रभु की कृपा भयउ सबु काजू'* जब श्रीराम हनुमान्‌को ही कर्ता एवं अपना सबसे बड़ा उपकारी बताते हैं तो हनुमान् विनम्रतापूर्वक समर्पित भावसे इनकार करते हुए कहते हैं— *'सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥'* यहाँ भी अपनी सीमाके ज्ञानी एवं मर्यादा-अनुशासित हनुमान्‌जी अपनेको निमित्तमात्र ही मानते हैं और लंकामें अपने सभी कार्योंका सारा श्रेय श्रीरामको ही देते हैं। अतः हनुमान्‌जीकी लंका-यात्रामें केवल कर्तव्यबोधका भाव है, फल-आकांक्षा-बोधका नहीं। सीता-खोजमें श्रीरामको हमेशा अपने हृदयमें धारण करने, उन्हींको कर्ता मानने तथा उनकी कृपापर अटूट विश्वास रखनेके कारण हनुमान्‌जी हमेशा चिन्तारहित निर्भय-भावमें रहते हैं।

भगवान्‌का भक्तमें विलय

हनुमान्‌जीके लिये महानतम ईश्वरीय कृपा तथा मुक्तिका क्षण आता है, जब श्रीराम हनुमान्‌को लंकासे लौटनेपर अश्रुपूर्ण नेत्रोंके साथ गले लगा लेते हैं। उनके लिये यह अप्रत्याशित तथा अकल्पित चमत्कार है। प्रभु श्रीराम कृतज्ञ भावसे कहते हैं कि हनुमान्‌जीके समान दुनियामें कोई मनुष्य, मुनि अथवा शरीरधारी उपकारी नहीं है *'सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।'* प्रभुकी अनवरत अश्रुधारामें हनुमान्‌जी स्वयं अश्रुपूरित हो बहने लगते हैं—

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

दोनों एक-दूसरेके प्रति कृतज्ञ एवं समर्पित हो रो रहे हैं। इस मार्मिक क्षणमें श्रीराम एवं हनुमान्‌जी, भगवान् एवं भक्त प्रेममें एक हो जाते हैं। यही है सुन्दरकाण्डका सुन्दरत्व।

'जो गुनरहित सगुन सोइ कैसे····?'

एक बार गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजको किसी सन्तने बताया कि पुरी जगन्नाथजीमें तो साक्षात् भगवान् ही दर्शन देते हैं। बस, फिर क्या था! यह सुनकर तुलसीदासजी तो बहुत ही प्रसन्न हुए और अपने इष्टदेवका दर्शन करने श्रीजगन्नाथपुरीको चल दिये। महीनोंकी कठिन और थका देनेवाली यात्राके उपरान्त जब वे जगन्नाथपुरी पहुँचे और मन्दिरमें प्रविष्ट हुए, तो जगन्नाथजीका दर्शन करते ही उन्हें बड़ा धक्का-सा लगा, वे बड़े निराश हो गये और विचार किया कि यह हस्तपादविहीन देव, जगत्के सबसे सुन्दर और नेत्रोंको सुख देनेवाले मेरे इष्टदेव श्रीराम नहीं हो सकते।

इस प्रकार दुखी मनसे बाहर निकलकर दूर एक वृक्षके नीचे बैठ गये। सोचा कि इतनी दूर आना व्यर्थ हुआ। क्या गोलाकार नेत्रोंवाला हस्तपादविहीन दारुदेव मेरे राम हो सकते हैं? कदापि नहीं।

रात्रि हो गयी। थके-माँदे, भूखे-प्यासे तुलसीका अंग-अंग टूट रहा था। अचानक एक आहट हुई, वे ध्यानसे सुनने लगे।

बालकका स्वर सुनायी दिया—'अरे बाबा! तुलसीदासजी कौन हैं?'

तुलसीदासजीने सोचा साथ आये लोगोंमेंसे शायद किसीने पुजारियोंको बता दिया होगा कि तुलसीदासजी भी दर्शन करनेको आये हैं, इसलिये उन्होंने प्रसाद भेज दिया होगा।

उठते हुए वे बोले—हाँ भाई! मैं ही तुलसीदास हूँ।

बालकने कहा, 'अरे! आप यहाँ हैं? मैं बड़ी देरसे आपको खोज रहा हूँ। लीजिये, जगन्नाथजीने आपके लिये प्रसाद भेजा है।'

तुलसीदासजी बोले—'भैया! कृपा करके इसे वापस ले जाओ।'

बालकने कहा—'आश्चर्यकी बात है कि ***'जगन्नाथजीका भात, जगत पसारे हाथ'*** और वह भी स्वयं महाप्रभुने भेजा और आप अस्वीकार कर रहे हैं। कारण?'

तुलसीदासजी बोले—'अरे भाई! मैं बिना अपने इष्टदेवको भोग लगाये कुछ ग्रहण नहीं करता, फिर यह जगन्नाथका जूठा प्रसाद, जिसे मैं अपने इष्टको समर्पित न कर सकूँ, यह मेरे किस कामका?'

बालकने मुसकराते हुए कहा—'अरे बाबा! आपके इष्टदेवने ही तो भेजा है।'

तुलसीदासजी बोले—'यह हस्तपादविहीन दारुमूर्ति मेरे इष्ट नहीं हो सकते।'

बालकने कहा—'फिर आपने अपने 'श्रीरामचरितमानस'में यह किस रूपका वर्णन किया है—

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥

अब तुलसीदासजीकी भाव-भंगिमा देखनेयोग्य थी। नेत्रोंमें अश्रु-बिन्दु, मुखसे शब्द नहीं निकल रहे थे।

थाल रखकर बालक यह कहकर अदृश्य हो गया कि 'मैं ही तुम्हारा राम हूँ। मेरे मन्दिरके चारों द्वारोंपर हनुमान्का पहरा है, विभीषण नित्य मेरे दर्शनको आते हैं। कल प्रातः तुम भी आकर दर्शन कर लेना।'

तुलसीदासजीकी स्थिति ऐसी कि रोमावली रोमांचित थी, नेत्रोंसे अविरल अश्रुधार बह रही थी और शरीरकी कोई सुध ही नहीं। उन्होंने बड़े ही प्रेमसे प्रसाद ग्रहण किया।

प्रातः मन्दिरमें जब तुलसीदासजी महाराज दर्शन करनेके लिये गये, तब उन्हें जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्राके स्थानपर श्रीराम, लक्ष्मण एवं माता जानकीके भव्य दर्शन हुए। भगवान्ने भक्तकी इच्छा पूरी की।

जिस स्थानपर तुलसीदासजीने रात्रि व्यतीत की थी, वह स्थान 'तुलसी चौरा' नामसे विख्यात हुआ। वहाँपर तुलसीदासजीकी पीठ 'बड़छता मठ'के रूपमें प्रतिष्ठित है।

यह 'और' 'और' की तृष्णा!

[लोभका कारण और निवारण]

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

'शास्त्रकी बातें नहीं, व्यावहारिक उपाय बताइये।'

× × ×

मेरे एक परिचित हैं……।

एम०ए० पास। बुजुर्ग। उच्च पदपर प्रतिष्ठित। संस्कृतके विद्वान् उपनिषदोंके ज्ञाता। गीता-गायत्रीके भक्त।

उस दिन बातोंके सिलसिलेमें कहने लगे—'पुत्र-शोक, पितृशोक, मातृशोक, भ्रातृशोक……सहा जा सकता है, पर अर्थशोक नहीं।'

मैंने पूछा—'सो कैसे?'

बोले—'गया हुआ प्राणी तो अब लौटनेवाला नहीं, यह सोचकर मनुष्य सन्तोष कर लेता है। पर, आर्थिक हानि चुपचाप सहन कर लेना आसान बात नहीं।'

बात आगे बढ़ी तो आपने कहा, 'बहुत पूजापाठ, जप-तप करके आपने पुत्र-रत्नकी प्राप्ति की है। बच्चा खेल रहा है। उसके हाथसे स्याहीकी दावात उलट जाती है। दो-चार पैसेकी कौन कहे, मुश्किलसे एकाध छदामकी स्याही फैली होगी। और आप तड़ातड़ कई तमाचे जड़ देते हैं उसे! क्यों?'

मैंने कहा—'यह तो अर्थकी आसक्ति है।'

सिर हिलाते हुए वे बोले—'ठीक-ठीक!' यही आसक्ति तो मूल समस्या है। इससे छुटकारेका उपाय बताइये।'

इसके जवाबमें जब मैंने अभ्यास और वैराग्यकी बात कही तो वे बोले—'शास्त्रकी कोरी बातें मुझे नहीं चाहिये। कुछ व्यावहारिक उपाय बताइये, व्यावहारिक।'

× × ×

मैंने कहा—'अभ्यास और वैराग्यको आप अव्यावहारिक क्यों मानते हैं? सभी व्यावहारिक उपाय तो उसीके पेटमें आ जाते हैं।'

जैसे, कामसे हमें छुटकारा पाना है।

उसके लिये ब्रह्मचर्य-पालनके नियमोंका अभ्यास करना पड़ेगा और विकारोत्तेजक प्राणी-पदार्थों और प्रसंगोंसे वैराग्य लेना होगा।

क्रोधसे हमें मुक्त होना है।

उसके लिये शान्तिका अभ्यास करना होगा, क्षमाका अभ्यास करना होगा ओर क्रोध भड़कानेवाले प्राणी-पदार्थों और प्रसंगोंसे वैराग्य लेना पड़ेगा।

लोभसे हमें विरत होना है।

उसके लिये भी सन्तोषका अभ्यास करना होगा और हर प्रकारकी लोलुपतासे वैराग्य लेना होगा।

× × ×

तुलसी बाबाने ठीक ही कहा है—

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥

कामना जबतक है, इच्छा जबतक है, 'और' 'और' की तृष्णा जबतक है, तबतक सुख कहाँ? शान्ति कहाँ? आनन्द कहाँ?

× × ×

योगवासिष्ठमें एक बड़ी प्रेरक कहानी है—

वसिष्ठ महाराज श्रीरामसे बोले—राम! एक बार मैं एक बड़े भयानक जंगलमें घूम रहा था कि मुझे एक ऐसा आदमी दीख पड़ा, जिसके हजारों आँखें थीं और हजारों हाथ। मैंने देखा कि वह पागलकी तरह कभी इधर दौड़ता है, कभी उधर। कभी हँसता है, कभी रोता। कभी आनन्दविभोर होकर नाचने लगता है, कभी शोकमें डूबकर पछाड़ें खाने लगता है। अपनी हजारों आँखोंसे वह हजारों चीजें देखता है और तेजीसे उनकी ओर लपकता है। वह कभी एक चीज पकड़ता है, कभी दूसरी। एक वस्तुका ठीकसे आनन्द नहीं ले पाता कि दूसरीकी ओर दौड़ पड़ता है। जो चीज नहीं मिल पाती उसके लिये वह अपने हाथों अपनी देह पीटता है। रो-रोकर आँखें लाल कर लेता है। कभी वह कँटीले कुंजोंमें जा

फँसता है, जिससे उसका सारा शरीर लहू-लुहान हो जाता है। पीड़ासे छटपटाकर वह गन्दे, दूषित अन्धकूपमें जा गिरता है। विषैले जीव उसे नोचने और काटने लगते हैं। सबेरा होनेपर जब प्रकाश फैलता है, तब वह किसी तरह उस अन्धकूपसे बाहर निकलता है और फिर अपना वही धन्धा शुरू कर देता है।

इस जीवको कहीं शान्ति नहीं मिलती। केलेके वनमें इसे क्षणभरके लिये विश्राम मिलता है, पर यह वहाँ देरतक टिक ही नहीं पाता। 'और' 'और' की तृष्णा इसे चारों ओर दौड़ाती फिरती है।

वसिष्ठजीने बताया कि यह मन ही वह पागल प्राणी है। तरह-तरहकी कामनाएँ और वासनाएँ ही उसकी हजारों आँखें और हजारों भुजाएँ हैं। अज्ञानवशात् वह इस भवाटवीमें भटकता, चक्कर खाता और तरह-तरहके दु:खोंमें पड़कर छटपटाता है और अन्धकूपमें गिरकर नारकीय यन्त्रणाएँ भोगता है। ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर ही यह पागलपन मिटता है तथा सच्चे सुख और आनन्दकी प्राप्ति होती है।

× × ×

इस पागल प्राणीकी ही भाँति हम सब चारों तरफ भटकते फिरते हैं। कभी इसके लिये हाथ लपकाते हैं, कभी उसके लिये। कभी इधर दौड़ते हैं, कभी उधर।

सन्तोष ही इसका एकमात्र उपाय है।

भगवान्ने जो दिया है, जितना दिया है, जैसा दिया है, उसीमें हम सन्तोष मानें, बस—बेड़ा पार है।

दु:ख तो तभी होता है, जब हम प्राप्त प्राणी-पदार्थोंसे, प्राप्त प्रसंगों और प्राप्त वातावरणसे सन्तुष्ट नहीं रहते।

जो प्राप्त है, उससे हम प्रसन्न नहीं।

जो अप्राप्त है, उसीके लिये हम बेचैन हैं।

× × ×

सन्तान नहीं है तो कहते हैं एक छोटी चुहिया ही हो जाती।

बेटी हो तो कहते हैं, काश, बेटा होता!

बेटा हो जाय तो कहते हैं—इसकी परवरिशको धन हो।

धन हो जाय तो कहते हैं—नाम हो।

इसी तरह कभी हम एक चीजके लिये रोते हैं, कभी दूसरीके लिये! कहीं पार है इस तृष्णाका?

तालिबको अपने रखती है, दुनिया जलीलो ख्वार!
जरकी तमासे खाक छानते हैं, न्यारिये!! आतिश॥

× × ×

एक चील्ह कहींसे मांसका एक टुकड़ा पा गयी।

आकाशमें उसे लेकर उड़ी तो बहुत-सी चील्हें उसके पीछे पड़ गयीं।

सभी लगीं उसे चारों ओरसे नोचने।

मुसीबत हो गयी उसकी।

जब चील्हानोचन बहुत बढ़ी, तब विवश हो चील्हने वह मांसका टुकड़ा ही फेंक दिया।

यह लीजिये सारी झंझट समाप्त।

सभी चील्हें उसे छोड़कर उस टुकड़ेकी तरफ दौड़ पड़ीं।

चील्ह सुख और शान्तिका अनुभव करने लगी।

दत्तात्रेय उसे प्रणाम करके बोले—चील्ह माता, तू भी मेरी गुरु! संग्रहका त्याग करनेसे, आसक्तिका त्याग करनेसे इसी तरह आनन्दकी प्राप्ति होती है।

× × ×

आशाकी डोरी बँधी छिन घरमें छिन द्वार।
थिरता ना संतोष बिनु, दुखी पिंगला नार॥

आधी राततक कोई ग्राहक नहीं आया तो पिंगला वेश्या सोचने लगी—छि:-छि: कैसा घृणित है मेरा जीवन! ***'सबै दिन गये विषयके हेत।'*** पैसेके लिये, धन-सम्पत्तिके लिये, ऐश्वर्यके लिये, पेटके लिये यह नारकीय कर्म! रात-दिन उसीकी चिन्ता। जो सब जगको खिलाता है, वह मुझे दो दाने न देगा क्या?

लख चौरासी योनिमें सबको भोजन देय।
सदा वही पालन करे अपनो नाम न लेय॥

उसी क्षण पिंगलाने अर्थकी आसक्तिको, लोभकी तृष्णाको गोली मार दी।

और फिर तो आनन्द छोड़कर होगा ही क्या!

× × ×

माना, कंचनकी आसक्तिसे छुटकारा पाना, पैसेकी आसक्तिका त्याग करना, संग्रह और परिग्रहसे मुक्त हो जाना मामूली बात नहीं है, पर करना तो हमें यही है।

'और' 'और' की इस तृष्णासे छूटे बिना हमारा उद्धार हो नहीं सकता। लोभका जबतक निवारण नहीं होता, तबतक न हम अपना कल्याण कर सकते हैं, न दूसरोंका। पैसेको जबतक हम दाँतसे पकड़े हैं, तबतक मुक्ति कहाँ?

× × ×

मृत्यु-शय्यापर पड़ा बूढ़ा बगलके कमरेमें जलती बत्तीको देखकर चिल्लाता है—'अरे, कोई बुझाओ उसे। तेल व्यर्थ जला जा रहा है।'

ऐसा अर्थप्रेम हमारी नस-नसमें घुसा पड़ा है। कौड़ी-कौड़ी, छदाम-छदामकी आसक्ति हममें भरी है। अमीर हो या गरीब, जमींदार हो या किसान—सबमें इसके लक्षण दीख पड़ते हैं। राजा साहबको अपने महलका लोभ है, जर-जमीनका लोभ है, बैंक-बैलेंसका लोभ है तो इस फटेहाल मजदूरको अपनी फटी गुदड़ी और टूटे छप्परका ही लोभ है।

लोभमें, लोभकी मात्रामें, कोई किसीसे कम नहीं। अर्थशास्त्रकी परिभाषामें फटी गुदड़ी, फूटा कनस्तर भी 'सम्पत्ति' माना जाता है, केवल सोना-चाँदी, रुपया-पैसा ही नहीं। तो इस सम्पत्तिके प्रति आसक्ति रखना ही लोभ है। यह आसक्ति छोड़ते ही लोभसे छुटकारा मिल जाता है।

× × ×

'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'—हमारा पुरातन आदर्श है। विनोबा कहते हैं—***'संपति सब रघुपति कै आही'***—ऐसा मानकर हम चलें तो समाजके सारे दुःख-क्लेश समाप्त हो जायँ। मुसीबत तो यही है कि हम लक्ष्मीको भगवान्‌की सम्पत्ति न मानकर अपनी मानने लगते हैं!

उसके ट्रस्टी बनकर समाजके हितमें उसका उपयोग करनेके बजाय हम अपने निजके उपभोगमें उसे लगाते हैं। सम्पत्तिपर हम अपना स्टाम्प लगाना चाहते हैं, अपनी मुहर लगाना चाहते हैं, 'सर्वाधिकार सुरक्षित' का 'लेबुल' लगाना चाहते हैं। येनकेनप्रकारेण उसपर अपना आधिपत्य जमाकर हम अकेले ही उसका उपभोग करना चाहते हैं। दूसरोंको उसकी जरूरत है, उसके अभावमें वे बिलला रहे हैं, तड़प रहे हैं, नाना प्रकारके कष्ट भुगत रहे हैं, परंतु हमारे कानोंपर जूँ-तक नहीं रेंगती।

हमारी यह स्वार्थपरता, हमारी यह तृष्णा ही सारे अनर्थोंका मूल है।

× × ×

हम जबतक इस तृष्णासे छुटकारा नहीं पाते, तबतक हमारी उन्नति होनेवाली नहीं। सम्पत्तिपर जबतक हम व्यक्तिगत अधिकार जमाये बैठे हैं, उसे अपनी मिल्कियत बनाये बैठे हैं, तबतक हमारा और हमारे समाजका कल्याण होनेवाला नहीं।

संसारकी सारी सम्पत्ति भगवान्‌की है, समाजकी है, हमारा अपना कुछ नहीं। उसपर अमीरका भी उतना ही अधिकार है, जितना गरीबका; बड़ेका भी उतना ही अधिकार है, जितना छोटेका। हम समाजकी सेवा करके केवल अपने पोषणभरके लिये सम्पत्ति पानेके अधिकारी हैं; उसे जोड़कर धन्नासेठ बननेका हमें कोई अधिकार नहीं।

दूसरा भूखा बैठा रहे और मैं खाऊँ; दूसरा फटे चिथड़े लगाये हो और मैं ट्रंकमें पचासों सूट भरे रहूँ। दूसरा कष्टोंसे छटपटाता रहे और मैं चैनकी वंशी बजाता रहूँ, यह स्थिति भयावह है। घरमें, समाजमें, देशमें, संसारमें फैली इस विषम स्थितिका जबतक मूलोच्छेदन नहीं होता, तबतक मानव-जाति सुखी और प्रसन्न हो नहीं सकती।

'और' 'और' की तृष्णा जबतक नहीं मिटती, तबतक सुख-शान्तिका स्वप्न देखना ही गलत है।

× × ×

लोभकी तृष्णा मिटानेका एक ही कदम है—

अस्तेय, अपरिग्रह और सन्तोष।

जो वस्तु हमारी नहीं है, उसपर हम लोभभरी दृष्टि न डालें।

जिस वस्तुकी हमें जरूरत नहीं है, वह हम उसे दे डालें, जो उसके अभावमें कष्ट पा रहा है। टालस्टायका यह वाक्य हमारा आदर्श रहे 'तेरे पास दो कोट हैं तो एक तू उसे दे डाल जिसके पास एक भी कोट नहीं है।'

निष्काम कर्म करते हुए हमें जो मिल जाय उसीमें हम सन्तुष्ट रहें।

× × ×

किसीने बहुत सही कहा है—

तुझे इमारतकी गर तलब है,
लुटा दे दौलत को बेकसोंमें,
मिसाले दरिया जो पाये दे दे,
मिलेगा, मत इन्तजार कर, दे!

प्रकृतिसे भी हम शिक्षा लें तो हमारा बेड़ा पार हो जाय।

वृक्ष न कबहूँ फल भखै, नदी न संचै नीर।

और हम हैं कि सब कुछ समेटकर अपना ही घर भर लेना चाहते हैं, उसके अभावमें दूसरा मरे तो मरे। आज विश्वमें इतना दु:ख-दैन्य, इतना हाहाकार इसीलिये तो है कि हम देना भूल गये, त्याग करना हमने त्याग दिया।

× × ×

दान और दया, त्याग और तपके पुरातन आदर्शको हमें फिरसे अपनाना है।

'ऐरन की चोरी करै, करै सुई को दान!'

—दान नहीं है। लालाजी कालेबाजारमें दस लाख कमाकर एक हजारका दान दे डालते हैं, इसे दान कहना दानका उपहास करना है। पसीनेकी कमाईमेंसे एक कौड़ीका दान चोरी और सट्टेके लाखोंके दानसे कहीं श्रेष्ठ है।

इसके लिये हमें व्यवहार-शुद्धि करनी होगी, आचरण-शुद्धि करनी होगी। हमें कदम-कदमपर सोचना होगा कि हमारी कमाईमें बेईमानीकी एक कौड़ी भी तो शामिल नहीं हो रही है? हम किसीका शोषण तो नहीं कर रहे हैं? किसी दूसरेकी सम्पत्ति तो नहीं हड़प रहे हैं?

× × ×

यह ठीक है कि इसके कारण हमें पहले-पहले कष्टोंका स्वागत करना होगा, ऐश और हशरतसे किनाराकशी करनी होगी, भोगोंका त्याग करना होगा, निष्काम कर्मकी साधना करनी होगी।

परंतु इससे हमें वह सुख, वह शान्ति और वह आनन्द मिलेगा, जिसकी हमने कभी कल्पना भी न की होगी।

गरीबके आँसू पोंछनेका जो आनन्द है, वह अनुभव करनेकी चीज है, कहने-सुननेकी नहीं।

× × ×

हम इस मार्गपर बढ़ेंगे तो दुनियावी दृष्टिसे भले ही हम अकिंचन दीख पड़ें, पर वस्तुत: हम परम धनके अधिकारी बनेंगे। कारण,

'जब आये संतोष धन, सब धन धूरि समान!'

तब हमारी सारी आसक्ति जाती रहेगी, सारी कामनाओंकी समाप्ति हो जायगी। लोभ और लालच हमारे पासतक नहीं फटक सकेगा। तब न तो चोरी होगी, न परिग्रह। न बेईमानी होगी, न असन्तोष। न शोषण होगा, न दोहन। न अन्याय होगा, न अत्याचार।

× × ×

आइये, हम सब कृतसंकल्प होकर इस ओर बढ़ें।

बापूका यह आदर्श सदैव ही हमारा पथ आलोकित करता रहे—

'आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसीका होता है, जो मन और कर्मसे दिगम्बर हो, अर्थात् वह पक्षीकी तरह गृहहीन, अन्नहीन और वस्त्रहीन होकर विचरण करे। अन्नकी उसे रोज आवश्यकता होगी और भगवान् उसे रोज देंगे। पर, इस अवधूत स्थितिको तो बिरले ही पा सकते हैं। हम तो सामान्य कोटिके सत्याग्रही ठहरे, जिज्ञासु ठहरे। हम आदर्शको ध्यानमें रखकर नित्य अपने परिग्रहकी जाँच करते रहें और जैसे बने वैसे उसे घटाते रहें।'

आरोग्य-चर्चा—

अनिद्रा—नींद न आना

(योगाचार्य डॉ० श्रीओमप्रकाशजी 'आनन्द')

आजकल जितना व्यायामकी आवश्यकता है, जितना संयमकी आवश्यकता है, जितना सन्तुलित आहारकी आवश्यकता है, उतनी ही गहरी नींदकी आवश्यकता होती है। बड़ोंको लगभग ५-६ घण्टेकी नींदकी और बच्चोंको आठ घण्टेकी नींदकी आवश्यकता होती है; क्योंकि निद्राके क्षणोंमें ही हमारी पेशियाँ (मसल्स) एवं स्नायु-संस्थान (नर्वस सिस्टम)-को पूर्ण विश्राम मिलता है। कोषों (सेल्स)-की क्षतिपूर्ति होती है। कार्य करनेकी पुनः शक्ति वापस मिलती है।

अनिद्राके कारण आँखें भारी, चिड़चिड़ापन, याददाश्तकी कमजोरी, हृदयरोग, शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक तनाव एवं असन्तुलन हो जाता है।

सुषुप्ति नींद स्वप्नरहित होती है। इस नींदमें ४-५ घण्टेकी नींद पर्याप्त होती है। ऐसी नींद कठोर श्रमके बाद ही आती है या श्वास-प्रश्वासका ध्यान करते हुए सोनेपर आती है। अथवा यदि अजपा-जप सिद्ध कर लिया जाय तो इष्ट-नाम-जप करते-करते सोनेसे मिलती है।

अनिद्राका कारण—प्रज्ञा-बुद्धिके जागरणके अभावमें मानसिक चिन्ताएँ, शारीरिक श्रमका अभाव, कब्ज-गैस, एसीडिटी, रातको अधिक खाना, चाय-काफीका अधिक सेवन, टी०वी प्रोग्राम एवं मोबाइलका अधिक देखना अनिद्राका कारण हो सकता है। नींदकी गोलियाँ भी कुछ दिनों बाद अनिद्राका रोग उत्पन्न कर देती हैं।

अच्छी नींदके लिये

१-भोजनके न पचने, कब्ज रहनेसे भी नींद नहीं आती। बस्ति-क्रियासे कब्ज दूर होती है। अतः ठीकसे बस्ति-क्रिया करें, इससे कब्ज टूट जायगा। यदि कब्जके कारण अनिद्रा होगी तो नींद आने लगेगी।

२-प्रातःकाल भोजनके पूर्व खाली पेट यथासामर्थ्य तेलनेति, रबरनेति एवं जलनेति करें। यदि कफ विकारके कारण अनिद्रा होगी तो नींद आ जायगी।

३-पित्तका कष्ट अनुभव करें तो कुंजर करें। यदि कुपित पित्तके कारण अनिद्रा होगी तो नींद आने लगेगी।

४-सोनेके पूर्व तलुओंमें सरसोंके तेलकी मालिश करें। सिर गरम हो तो किसी ठण्डे तेलसे मालिश करायें।

५-अच्छी निद्राके लिये १०-१५ मिनटका गरम पाद-स्नान लें। प्राकृतिक चिकित्साकी इस क्रियासे नींद बहुत अच्छी आती है।

६-सोनेसे पूर्व कोई आध्यात्मिक पुस्तक पढ़ें, इससे मन शान्त होगा।

७-उत्तरकी ओर सिर करके न सोयें। पूर्वकी ओर सिर करके सोना श्रेष्ठ है।

८-श्वासका ध्यान करते-करते या अपने इष्टके नामका जप करते-करते या श्वास-प्रश्वासके साथ उलटी गिनती करें, नींद आ जायगी।

९-धीरे-धीरे किंग एवं क्वीन एक्सरसाइज करें, तो नींद आ जायगी।

१०-जीर्ण जुकामके कारण कुछ दिनोंके बाद नासिकाके छिद्र भर जाते हैं, परिणामतः श्वास पूरा न पहुँचनेपर भी नींद नहीं आती या गहरी नहीं आती। इससे छुटकारा पानेके लिये किसी योग्य योग शिक्षकके मार्गदर्शनमें तेलनेति या रबरनेति करें। सूजन हो तो नासिकामें चुम्बक-चिकित्सा लेकर पहले सूजन गायब करें। जलनेति न करें। जब बिलकुल जुकाम ठीक हो जाय तब नमकीन गुनगुने पानीसे जलनेति करें, किंतु बादमें खूब नाक साफ करना न भूलें।

११-यदि नींदकी गोली खानेकी आदत हो गयी है, तो एक बारमें न छोड़ें। धीरे-धीरे कम मात्रा करके बन्द कर दें। अच्छी नींदके लिये आयुर्वेदकी 'सर्पगन्धा टेबलेट' भी अच्छी होती है।

गीतामें वर्णित गुणत्रय

(साहित्यवाचस्पति श्रीयुत डॉ० श्रीरंजनजी सूरिदेव)

संसारमें जो विचित्रता दिखायी पड़ती है, वह सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणोंकी ही महिमा है। ये तीनों गुण प्रकृतिसे उत्पन्न हैं। गुणोंकी साम्यावस्था ही प्रकृति है। उक्त तीनों गुण ही अविनाशी जीवात्माको शरीरी बनाते हैं। इन तीनों गुणोंमें सत्त्व अपनी निर्मलताके कारण निर्विकार और प्रकाशमय है। अनामय और शान्त है। शान्त होनेके कारण ही वह अपने कार्यसे सुखपूर्वक मनुष्यको जोड़ता है।

रजोगुण रागात्मक है। वह तृष्णा और आसक्तिसे उत्पन्न होता है। अप्राप्तके प्रति तृष्णा ही अभिलाषा है और प्राप्तके प्रति प्रीति ही आसक्ति है। रजोगुण इसी तृष्णा और आसक्तिद्वारा मनुष्यको कर्म-बन्धनमें डाल देता है।

तमोगुण अज्ञानसे उत्पन्न होता है। वह आवरण-शक्तिप्रधान प्रकृतिका अंश है, इसीलिये सभी देहाभिमानियोंको भ्रमित करता रहता है। प्रमाद, आलस्य और निद्रासे तमोगुणी बँधा रहता है। असावधानी ही प्रमाद है। उद्यमहीनता ही आलस्य है। अवसादमें चित्तका लीन होना ही निद्रा है।

सत्त्वगुण मनुष्यको सुखसे जोड़ता है। दुःख-शोक आदिका कारण होनेपर भी वह मनुष्योंको सुखोन्मुख ही करता है। सुख आदिका कारण होनेपर भी रजोगुण कर्मसे ही जोड़ता है। तमोगुण ज्ञानको आवृतकर प्रमाद और आलस्यसे जोड़ता है। सत्त्वगुणकी प्रबलतामें रजोगुण और तमोगुण प्रभावकारी नहीं होते। रजोगुणकी प्रबलतामें सत्त्व और तमोगुण दबा रहता है। तमोगुणकी प्रबलता सत्त्व और रजोगुणको दबा देती है।

भोगायतन-रूप शरीरके नवों द्वारोंमें जब ज्ञानका प्रकाश उत्पन्न होता है, तब सत्त्वकी प्रबलता रहती है। जब रजोगुणकी प्रबलता होती है, तब लोभ उत्पन्न होता है। धन आदिकी बहुलताके बावजूद अभिलाषाका पूरा न होना ही लोभ है। आयके प्रति प्रवृत्ति कभी शान्त नहीं होती। इतना कर लिया, इतना और करूँगा, इस प्रकारके संकल्प-विकल्प या उधेड़बुनमें पड़ा मनुष्य कभी शान्तिका अनुभव नहीं करता। उसकी इधर-उधर हाथ मारते रहनेकी प्रवृत्ति या स्पृहा उसे बेचैन किये रहती है।

तमोगुणकी प्रबलताकी स्थितिमें मनुष्य विवेक-भ्रष्ट हो जाता है। उद्यमहीनता, प्रमाद, मोह-जैसी भावनाओंसे वह व्याकुल रहता है। सत्त्वगुणकी वृद्धिकी स्थितिमें मनुष्य जब मृत्युको प्राप्त होता है, तब वह उत्तम हिरण्यगर्भ आदि प्रकाशमय लोक, जो सुखोपभोगका स्थान-विशेष हैं, को प्राप्त करता है।

रजोगुणकी वृद्धिकी स्थितिमें मृत्युको प्राप्त मनुष्य कर्मासक्तिसे युक्त मनुष्यलोकमें ही पुनर्जन्म पाता है। तमोगुणकी वृद्धिकी स्थितिमें मृत मनुष्य पशु आदि मूढयोनिमें जन्म लेता है।

कपिल आदि तपोनिष्ठ मुनिका कथन है कि सुकृत कर्मका सत्त्वप्रधान प्रकाशपूर्ण निर्मल फल होता है। राजस कर्मका फल दुःख होता है और तमोगुणका फल मूढ़ता है। सत्त्वगुणसे ज्ञान होता है। रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान होता है।

सत्त्ववृत्तिसे सम्पन्न मनुष्य मरणोत्तर ऊर्ध्वलोक यानी उत्तरोत्तर सौगुने आनन्दसे युक्त गन्धर्व, पितृदेव आदि लोकोंमें निवास पाता है। राजस वृत्तिवाला तृष्णासे सन्तप्त और आकुल मध्यलोक यानी मनुष्यलोकमें ही रह जाता है और तमोगुणी तो अतिनिकृष्ट, जघन्य, प्रमाद, मोह आदिसे पूर्ण अधोलोकका अधिवासी होता है। अर्थात् अन्धकारसे परिपूर्ण तमिस्त्र आदि नरकोंमें उत्पन्न होता है। भगवान् कहते हैं—जिस समय द्रष्टा पुरुष सत्त्वादि तीनों गुणोंके अतिरिक्त अन्य किसीको कर्ताके रूपमें नहीं देखता और तीनों गुणोंसे अति परे सच्चिदानन्दघनस्वरूप मुझे यानी मुझ परमात्माको तत्त्वसे जानता है, उस समय वह मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इतना ही नहीं, पुरुष शरीरकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप यथोक्त तीनों गुणोंको पारकर जन्म, मृत्यु और जरा यानी वृद्धावस्था एवं सब प्रकारके दुःखोंसे मुक्त होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त करता है।

तीर्थ-दर्शन—

हिमाचलकी चिन्तपूर्णी माता

[छिन्नमस्तिकाधाम]

(प्रो० श्रीमती पूजाजी वशिष्ठ)

प्रकृतिकी गोदमें बसा हिमाचल प्रदेश देवभूमिके नामसे जाना जाता है। यहीं ऊना खण्डमें सोलह सिंगी (शृंगी) पर्वतमालाके छपरोह क्षेत्रमें इक्यावन शक्तिपीठोंमें-से एक प्रमुख शक्तिपीठ छिन्नमस्तिका धाम है, जो चिन्तपूर्णी देवीके नामसे विख्यात है। ऐसी मान्यता है कि माँ दुर्गा भगवतीके नौ विभिन्न रूप आपसमें बहनें हैं और चिन्तपूर्णी उनमेंसे सबसे छोटी बहन हैं।

दक्षयज्ञका विध्वंस करनेके बाद भगवान् शिव सतीके शरीरको लेकर घूम रहे थे, तो नारायणने चक्रसे सतीके शरीरके अनेक टुकड़े कर दिये; जिस स्थानपर चरण गिरे, उसी स्थानपर देवी पिण्डीरूपमें प्रकट हुईं और वह स्थान चिन्तपूर्णी देवीके रूपमें जाना गया। रक्तबीज असुरका संहार करते समय माँ दुर्गाने अपनी शक्ति दो अयोनिजा योगिनियों—जया और विजयाके रूपमें प्रकट कीं, जो रक्तबीजके रक्तका पान करने लगीं। लेकिन रक्तबीज दैत्यके रक्तपानसे इन योगिनियोंकी रक्त-पिपासा शान्त नहीं हुई। उस समय माँ दुर्गाने अपना मस्तक काटकर अपने हाथमें ले लिया। कटे हुए मस्तकसे रक्तकी दो धाराएँ निकलीं, जिन्हें पीकर जया-विजयाकी रक्त-पिपासा शान्त हो गयी। इस अलौकिक लीलामें कटे हुए मस्तकवाले रूपको देवी छिन्नमस्तिकाका नाम दिया गया। असुरोंके कारण देवताओंकी चिन्ताको हरनेवाली माँके इस रूपको चिन्ता दूर करनेवाली चिन्तपूर्णी माँके नामसे जाना जाने लगा। इस स्थानकी खोजका श्रेय चौदहवीं शताब्दीमें माईदास नामक ब्राह्मणको दिया जाता है, जिसकी भक्तिसे प्रसन्न होकर देवीने उसे कन्या (कंजक)-रूपमें दर्शन दिये।

भक्त माईदास हिमाचल प्रदेशमें रियासत अम्बके गाँव रिकोह मिश्राके निवासी थे। उनका जन्म एक साधारण कृषक परिवारमें हुआ था। परिवारमें भक्तिका वातावरण था और माईदास माँ भगवती दुर्गाके अनन्य भक्त थे। इनका ससुराल हिमाचलके वर्तमान ऊना खण्डके एक छोटे-से गाँवमें था। इनके गाँव रिकोह मिश्रासे ससुरालके गाँवतक जानेका रास्ता दुर्गम पहाड़ियों और घने वियावान जंगलोंसे होकर निकलता था। एक बार भक्त माईदास अपनी ससुरालके गाँवमें जा रहे थे। रास्तेमें चिलचिलाती धूपसे पहाड़ीके ऊपर जंगलमें एक वटवृक्षके नीचे सुस्ताने लगे। लेटे-लेटे भक्त माईदासकी आँख लग गयी और स्वप्नमें माईदासको भगवती दुर्गा माँका दर्शन हुआ। स्वप्नमें माँके दर्शनसे बेहद प्रसन्नचित्त माईदास दूसरे दिन जब ससुरालसे वापस आने लगे तो पुनः उसी वटवृक्षके नीचे रुके। अचानक आकाशमें बादल छा गये और भयानक आँधी चलने लगी। भक्त माईदास वहीं माँ भगवतीको स्मरण करने लगे। तब माँ भगवती दुर्गाने ८-९ वर्षकी कन्या (कंजक)-के रूपमें प्रकट होकर वहीं माईदासको दर्शन देकर कहा—'हे माईदास, मैं तेरी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। इसी वटवृक्षके तनेके नीचे मैं पिण्डीरूपमें विद्यमान हूँ। तुम अपने कुल-परिवारके सदस्योंके साथ यहाँ आकर स्थायी निवास

करो। वटवृक्षके तनेके नीचेसे मेरा पिण्डीरूप निकालकर यहाँ विधिवत् मन्दिर स्थापित करो।' तब माईदासने हाथ जोड़कर प्रार्थना की और कहा—'हे माँ, यह जंगल वन्य जीवोंसे भरा पड़ा है। इस पहाड़ीपर दूर-दूरतक पानीका नामोनिशानतक नहीं है। यहाँ जीवन कैसे सम्भव हो पायेगा?' माँने उत्तर दिया, 'हे माईदास, इस पहाड़ीके थोड़ा नीचे काले रंगका एक विशाल शिलाखण्ड है, जिसके नीचे जलका स्रोत है। तुम इस शिलाखण्डको हटाओ। जलकी कोई कमी नहीं रहेगी। इसी जलसे प्रतिदिन मेरी पिण्डीको स्नान करवाना।' यह कहकर माँ भगवती अदृश्य हो गयीं।

माँकी आज्ञाको शिरोधार्य करते हुए माईदासने पहाड़ीके नीचे काले रंगके शिलाखण्डको ढूँढ़ निकाला, जिसके हटते ही शीतल मीठे जलका स्रोत फूट निकला। तब माईदासने वटवृक्षके तनेको खोदकर पिण्डीको निकाला और एक टोकरीसे ढक दिया। भक्त माईदासने गाँव जाकर सभीको यह बात बतायी और अपने कुल-परिवारके सभी बन्धु-बान्धवोंसहित जंगलमें वटवृक्षके पास पहुँचे। वे सभी लोग यहीं बस गये और कालान्तरमें यह स्थान छपरोहके नामसे मशहूर हुआ। जिस स्थानसे काला शिलाखण्ड हटाकर जलस्रोत फूटा था, वहाँ एक तालाबका निर्माण हुआ। आज भी वह शिलाखण्ड चिन्तपूर्णी मन्दिरमें पड़ा है और उसी तालाबसे जल लाकर प्रतिदिन मन्दिरमें पिण्डीका स्नान करवाया जाता है। धीरे-धीरे वटवृक्षके नीचे स्थापित पिण्डीरूपी स्वरूप भक्तोंकी आस्थाका केन्द्र बन गया और भक्त यहाँ अपनी चिन्ताओंके निवारणहेतु माँसे प्रार्थना करने आने लगे। तब रियासत अम्बके हिन्दू सनातनी राजाओंने इस स्थानपर एक भव्य मन्दिरका निर्माण करवाया। भक्त माईदासके दो पुत्र हुए, जिनके वंशकी सन्तानें चिन्तपूर्णी मन्दिरके पुरोहित-पुजारियोंके रूपमें आज भी मन्दिरमें माँकी सेवाका धर्म निभा रहे हैं। इसी मन्दिरसे लगभग ५०० मीटरकी दूरीपर भक्त माईदासके नामपर माईदास लंगर हाल बना हुआ है।

मन्दिरतक पहुँचनेका रास्ता लगभग २५० मीटरतक है, जो मुख्य बाजारोंसे होकर मन्दिरतक पहुँचता है। मन्दिरके बाहर श्रीहनुमान् तथा कालभैरवकी प्रतिमाएँ हैं। वह पुराना वटवृक्ष बहुत फैल चुका है, जिसपर भक्तजन मौली बाँधकर माँ भगवतीसे अपनी चिन्ता हरनेकी प्रार्थना करते हैं तथा मनोकामना पूरी होनेपर मौलीका धागा खोल देते हैं। मन्दिरके प्रांगणमें लाल रंगके झण्डे लहराते हैं। माँको कड़ाहीका हलवा और नारियलका भोग लगता है। मन्दिरके दरवाजे चाँदीसे बने हैं, जिनपर भगवतीके भिन्न-भिन्न रूपोंको दर्शाती सुन्दर प्रतिमाएँ अंकित हैं। प्रतिदिन लाल सिन्दूर और पीली हल्दीसे पिण्डीका भव्य श्रृंगार किया जाता है, जिसके दर्शनोंसे भक्तजनोंको आध्यात्मिक आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह मन्दिर हिमाचल प्रदेशका सबसे अधिक धनवान् मन्दिर है, जहाँ भक्तजन सोने, चाँदी और नकदीका अपार चढ़ावा चढ़ाते हैं। मन्दिरमें शहनाई और नौबत बजती रहती है और कन्या-पूजन भी चलता रहता है।

चैत्र नवरात्रों तथा शारदीय नवरात्रोंके अतिरिक्त सावनके गुप्त नवरात्रोंमें चिन्तपूर्णी मन्दिरमें मेला लगता है, जिनमें देश-विदेशसे लाखों भक्त माँके भवनमें शीश नवाते हैं। इन दिनों हिमाचल प्रदेशके ऊनासे तथा पंजाबमें होशियारपुरसे लेकर चिन्तपूर्णी मन्दिरतक बढ़िया-से-बढ़िया खाद्य-पदार्थोंके लंगर लगते हैं। रास्तेभरमें माँके जागरण होते हैं, जिनमें देशके प्रसिद्ध गायक-गायिकाएँ माँका गुणगान करते हैं।

सावन नवरात्रोंमें भगवती दुर्गाके विभिन्न रूप ज्योतिस्वरूपमें आकाशमार्गसे भिन्न-भिन्न दिशाओंसे प्रकट होकर चिन्तपूर्णी मन्दिरकी ओर आते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इस अलौकिक दृश्यको देखनेके लिये सावन अष्टमीपर लाखों भक्त इकट्ठे होते हैं। यह सभी ज्योतियाँ आकाशमार्गमें उड़ती हुई अन्तमें चिन्तपूर्णी मन्दिरकी अखण्ड ज्योतिमें समा जाती हैं। इस अलौकिक दृश्यकी समीक्षा करनेके लिये अनेकों तर्कशास्त्री तथा वैज्ञानिक अपना माथा फोड़ चुके हैं, परंतु कोई भी माँकी इन दिव्य ज्योतियोंका पार न पा सका।

चिन्तपूर्णी मन्दिरतक पहुँचनेके लिये रेलमार्गसे हिमाचलमें ऊना तथा पंजाबमें होशियारपुरतक पहुँचा जा सकता है। ऊनासे आगे मुबारकपुर तथा भरवाईके रास्तेसे होकर सड़क-मार्ग मन्दिरतक जाता है तथा होशियारपुरसे गगरेट तथा भरवाईसे होकर सड़क-मार्गद्वारा मन्दिर पहुँचा जा सकता है।

संत-चरित—

बन्धु महान्ति

स्वारथ के नेही जगत, सब कौ अपनी हाय।
दीनबंधु बिनु दीन की, को करि सके सहाय॥

उड़ीसाके याजपुर गाँवमें बन्धु महान्तिका घर था। स्त्री, एक पुत्र और दो कन्याएँ थीं घरमें। बन्धु बड़ा गरीब और बहुत सन्तोषी था। गाँवमें भीख माँगने जाता, एक दिनके कामभरको अन्न मिलते ही घर लौट आता। उसी अन्नसे अतिथि-सेवा होती, बच्चोंको भोजन कराया जाता; कुछ बच जाता तो स्त्री-पुरुष खा लेते, नहीं तो भगवान्‌का नाम लेते हुए उपवास रह जाते। बन्धु अपनी अवस्थामें परम सन्तुष्ट था। श्रीजगन्नाथजीमें उसकी अविचल भक्ति थी। उसके हृदयमें जो आनन्दका स्रोत निरन्तर झरता था, वह महलोंमें रहनेवाले, संसारके विषय-लोलुप लोगोंको भला, स्वप्नमें भी कहाँ प्राप्त हो सकता है।

अचानक देशमें अकाल पड़ गया। खेतोंमें अन्न तो क्या, घास भी नहीं उगी। कुएँ-तालाब सूख गये। जब लोग स्वयं पेड़ोंके छाल-पत्ते खाकर किसी प्रकार प्राण-धारण कर रहे हों, तब भिखारीको भिक्षा कैसे मिले? बन्धुका परिवार तीन दिनोंसे उपवास कर रहा है। बच्चोंका तड़पना-बिलबिलाना मातासे नहीं देखा जाता। उसने पतिसे कहा—'स्वामी! मेरे पिताके घर तो कोई रहा नहीं कि इस विपत्तिमें उससे कुछ सहायता मिलती, पर क्या आपके भी कोई बन्धु-बान्धव नहीं हैं? यदि कोई परिचित भी हो तो उनके पास चलिये। बच्चोंको दो मुट्ठी अन्न तो मिलना चाहिये।'

बन्धुने कहा—'देवि! इस जगत्‌में मेरे और तो कोई मित्र, परिचित या सम्बन्धी हैं नहीं; एक ही सुहृद् हैं। परन्तु वे यहाँसे पूरे पाँच दिनके रास्तेपर रहते हैं। हमलोग उनके पास पहुँच जायँ तो अवश्य ही हमारे समस्त दुःख सदाको दूर हो जायँगे। उनका नाम है दीनबन्धु। मुझ-जैसे दीनोंपर वे बड़ा स्नेह रखते हैं।'

स्त्री तुरंत चलनेको प्रस्तुत हो गयी। भूखों मरनेकी अपेक्षा पाँच दिनका रास्ता चल लेना सुगम था। लड़केको बन्धुने कंधेपर लिया, छोटी लड़कीको उसकी माताने गोदमें उठाया, बड़ी लड़की पैदल साथ चली। सामान तो कुछ था ही नहीं, घास-पत्ते खाते वे किसी प्रकार सन्ध्याके समय श्रीजगन्नाथपुरी पहुँचे। सिंहद्वारपर बहुत भीड़ समझकर बन्धुने मन्दिरके दक्षिण ओर पेजनाले (फेन बाहर निकलनेके नाले)-पर सबको लाकर बैठा दिया और बोले—'देखो! हमलोग बड़े असमयमें यहाँ आये हैं। इस समय मेरे मित्रसे भेंट होना बड़ा कठिन है। दूर-दूरसे उनके और मित्र भी आये हैं। उनकी भीड़के मारे मन्दिरमें प्रवेश पाना ही कठिन है। आजकी रात तो पेज-पानी (नालेका फेन) पीकर बिताओ। कल अपने बन्धुसे मिलकर सारी बातें कहूँगा।'

बेचारी स्त्री इतना ही जानती थी कि यहाँ उसके पतिके कोई बहुत सम्पन्न मित्र हैं। उनसे मिलनेपर बच्चोंके प्राण बच जायँगे। उसे धन-दौलत नहीं चाहिये। दो मुट्ठी अन्न बच्चोंको मिल जाय तो अपने प्राणोंकी भी उसे चिन्ता नहीं। उस पतिव्रताने फूटी हँडियासे उस नालेका फेन ही बच्चोंको पिलाया। स्वयं पिया अपने पतिदेवको पिलाकर।

बन्धु महान्तिके हृदयकी दशा दूसरी ही थी। उनके मनमें न धनकी इच्छा थी, न अन्नकी। वे घरसे अपने दीनबन्धुके यहाँ पापी पेटके लिये भीख माँगनेका विचार करके नहीं चले थे। वे सोचते आये थे—'प्रभुकी कितनी दया है! मुझे तथा मेरी स्त्री एवं बच्चोंको भी जगन्नाथजीके दर्शन होंगे। देह भी छूटा तो पावन पुरुषोत्तमपुरीमें छूटेगा। मरना तो सबको एक दिन है ही। भगवान् विश्वम्भर तो सब कहीं हैं, उनपर अविश्वास करके अन्नके लिये भला दर-दर कौन भटकेगा। नीलाचल आकर तो उनके दर्शनका परम लाभ पाना है। 'नाथ! तुमसे कहना क्या है। तुम तो स्वयं सब जानते हो। मैं तो यही कहने आया हूँ कि मेरे मनमें कोई कामना हो तो उसे दूर कर दो।'

बन्धु महान्तिके लिये, उपवास किये हुए बच्चों तथा स्त्रीके लिये तो वह नालेका फेन ही अमृत जान पड़ा था। वे उसे पीकर सो गये। श्रीजगन्नाथमन्दिरमें रातकी सेवा समाप्त हो जानेपर मन्दिरद्वारपर रस्सी बाँधकर मुहर लगा दी गयी। मशालें जल गयीं। सब लोग बाहर चले गये। सब द्वार बन्द हो गये। सेवकगण सो गये। सब सो गये; पर जिसका बन्धु पाँच दिनका रास्ता चलकर पेज-नालेपर सपरिवार पड़ा था, जिसकी बन्धुतापर विश्वास करके वह इतनी दूर आया था, वे दीनबन्धु कैसे सो जाते। उन परम प्रभुके नेत्रोंमें निद्रा कहाँ। वे उठे, भण्डारमें आये और

अपने रत्न-थालको छप्पन भोग-प्रसादसे सजाकर एक ब्राह्मणके वेशमें मन्दिरके दक्षिण द्वारसे बाहर आकर पुकारने लगे—'बन्धु! ओ बन्धु!'

पुरीकी इस महानगरीमें एक अपरिचित अज्ञात 'बन्धु महान्ति'को भी कोई पुकार सकता है, यह बात बन्धु कैसे मान ले। पुरीमें और जाने कितने बन्धु हो सकते हैं। अतएव पुकार सुनकर भी उसने उत्तर नहीं दिया। अन्तमें जब पुकारनेवालेने 'याजपुरिया बन्धु!' कहकर पुकारना प्रारम्भ किया, तब हड़बड़ाकर दौड़ा हुआ वह द्वारके पास आया। ब्राह्मणने स्वरमें उलाहना भरकर कहा—'मैं पुकारते-पुकारते थक गया, मेरे हाथ इस भारी थालको उठाये-उठाये दर्द करने लगे; पर तुम कैसे हो, जो सुनते नहीं। लो इसे, आज इतनेसे काम चलाओ। कलसे तुम्हारे रहनेकी और भोजनकी सब व्यवस्था हो जायगी। कोई चिन्ता मत करो।

बन्धु महान्ति तो मुख देखता रह गया। थाल ले लिया उसने। उसे एक शब्द भी बोलनेका अवसर दिये बिना वे ब्राह्मणदेवता मन्दिरमें चले गये। बन्धु तो जड़की भाँति सन्न रह गया। बहुत देरमें कुछ होश आया, तब मतवालेकी भाँति झूमता हुआ स्त्री-बच्चोंके पास पहुँचा। सबको जगाया उसने। सबने महाप्रसाद पाया। स्त्रीने थाल धोया। बन्धु उसे लौटाने गया तो देखा कि द्वार बन्द है। थालको अपने फटे चिथड़ेमें लपेटकर सिरके नीचे रखकर वह सो गया।

प्रात:काल भण्डारीने भण्डार खोला तो उसका होश हवा हो गया। सब वस्तुएँ बिखरी पड़ी थीं। भगवान्‌के रत्नथालका पता ही नहीं था। हल्ला मचा, लोग एकत्र हुए, इधर-उधर दौड़-धूप होने लगी और अन्तमें बन्धु पकड़ गया। कोतवालके सामने पहुँचाये जानेपर उसने रातकी सब बातें सच-सच कह दीं। परंतु उसकी बातपर कौन विश्वास करता। स्त्री-बच्चोंसहित हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर वह कारागारमें बन्द कर दिया गया। बन्धुपर मार पड़ी थी, सब उसे गालियाँ दे रहे थे, कारागारमें बन्दी कर दिया गया था वह; किंतु इतनेपर भी उसे दु:ख हुआ न क्षोभ। वह कह रहा था—'मेरे स्वामी! तुम मेरी परीक्षा कर रहे हो? तुम्हीं मेरे बल हो तो क्या तुम्हारी परीक्षामें कोई उत्तीर्ण हो सकता है! तुम्हारे सभी विधान मंगलमय हैं। मैं तो तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हूँ। ये लोग आकर मुझे धिक्कारते हैं, गालियाँ देते हैं—यह सब दण्ड तो मेरे ही किसी पूर्वकृत पापका फल है। तुम्हारी तो यह महान् कृपा है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मुझे शुद्ध कर रहे हो। नाथ! तुम्हीं एकमात्र मेरे शरण हो। मैं केवल तुम्हींको जानता हूँ।'

दिनभर बन्धु महान्ति कारागारमें रहे। रात्रि हुई। पुरीनरेश महाराज प्रतापरुद्र खरदा नामक स्थानमें अपने स्थानपर सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा कि श्रीजगन्नाथजी बहुत ही रुष्ट होकर कह रहे हैं—'राजा! मेरा भक्त पाँच दिनोंसे भूखा-प्यासा याजपुरसे स्त्री-बच्चोंके साथ पैदल चलकर यहाँ आया; परंतु यहाँ मेरे किसी कर्मचारीने उसकी बात भी नहीं पूछी। वह भूखा पड़ा रहा तो मैं अपने रत्नथालमें उसे प्रसाद दे आया; रत्नथाल तो मेरा था, मैं अपने भक्तको दे आया। उसमें तेरा या और किसीका क्या? पर तेरे सेवकोंने उसे रत्नथालके लिये पीटा, सच-सच बता देनेपर भी कारागारमें बन्द कर दिया। अब तेरा भला इसीमें है कि इसी समय जाकर उसे बन्दी-घरसे छोड़ और सम्मानपूर्वक मन्दिरके हिसाब-रक्षकके पदपर नियुक्त कर दे। उसका सारा प्रबन्ध अभी जाकर कर दे।'

भगवान्‌के अन्तर्धान होते ही राजाकी नींद टूट गयी। उसी समय घोड़ेपर सवार होकर वे पुरी पहुँचे। स्वप्नकी सभी बातें सच्ची थीं। बन्धु महान्तिकी हथकड़ी-बेड़ी खोलकर वे हाथ जोड़कर बोले—'यहाँके लोगोंने आपको जो कष्ट दिया है, वह अपराध उनका नहीं, वह तो मेरा अपराध है। आप मुझे क्षमा करें।' राजाके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। बन्धुको बड़ा संकोच हुआ। उन्होंने राजाको आश्वासन दिया। सम्मानपूर्वक राजा उन्हें अन्दर ले गये। तीर्थजलसे स्नान कराकर उन्हें वस्त्राभूषण पहनाया। उनकी स्त्री तथा बच्चोंका भी बड़ा सत्कार किया। मन्दिरके दक्षिण ओर उनके रहनेका प्रबन्ध कर दिया। बन्धु महान्ति श्रीजगन्नाथमन्दिरके हिसाब-रक्षक-पदपर नियुक्त हुए। सदाके लिये प्रसादकी लिखित सनद उन्हें प्राप्त हुई। इतना करके तब राजाने जाकर मन्दिरमें श्रीजगन्नाथजीका दर्शन करके अपराधकी क्षमा माँगी।

बन्धु अब श्रीजगन्नाथपुरी ही रहने लगे। दीनबन्धुकी कृपासे वे महापुरुष हो गये। श्रीजगन्नाथजीके आय-व्ययका हिसाब अबतक श्रीबन्धु महान्तिके वंशज ही करते चले आते हैं।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, अधिक श्रावण कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।५८ बजेतक	बुध	श्रवण दिनमें ३।१२ बजेतक	२ अगस्त	**कुंभराशि** रात्रिमें २।२१ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें २।२१ बजे।
द्वितीया ,, ७।२९ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, १।३१ बजेतक	३ ,,	**आश्लेषामें सूर्य** रात्रिशेष ५।९ बजे।
तृतीया सायं ५।३ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ११।५३ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।१६ बजेसे सायं ५।३ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ४।४३ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।५५ बजे।
चतुर्थी दिनमें २।४४ बजेतक	शनि	पू०भा० ,, १०।२० बजेतक	५ ,,	× × × × ×
पंचमी ,, १२।३९ बजेतक	रवि	उ०भा० ,, ८।५१ बजेतक	६ ,,	**मूल** दिनमें ८।५९ बजेसे।
षष्ठी ,, १०।५० बजेतक	सोम	रेवती ,, ७।५५ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।५० बजेसे रात्रिमें १०।६ बजेतक, **मेषराशि** दिनमें ७।५५ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत, पंचक समाप्त** दिनमें ७।५५ बजे।
सप्तमी ,, ९।२१ बजेतक	मंगल	अश्विनी ,, ७।१० बजेतक	८ ,,	**मूल** दिनमें ७।१० बजेतक।
अष्टमी ,, ८।१७ बजेतक	बुध	भरणी प्रात: ६।४९ बजेतक	९ ,,	**वृषराशि** दिनमें १२।५० बजेसे।
नवमी ,, ७।४१ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, ६।५५ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।३८ बजेसे।
दशमी ,, ७।३६ बजेतक	शुक्र	रोहिणी दिनमें ७।३१ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।३६ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें ८।४ बजेसे।
एकादशी ,, ८।३ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ८।३८ बजेतक	१२ ,,	**पुरुषोत्तमी एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ८।५७ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, १०।११ बजेतक	१३ ,,	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।२० बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, १२।१४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।२० बजेसे रात्रिमें ११।११ बजेतक, **कर्कराशि** प्रात: ५।४३ बजेसे, **श्रावण सोमवारव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२।३ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, २।३४ बजेतक	१५ ,,	**स्वतन्त्रता दिवस, श्राद्धकी अमावस्या, मूल** दिनमें २।३४ बजेसे।
अमावस्या ,, २।१ बजेतक	बुध	आश्लेषा सायं ५।८ बजेतक	१६ ,,	**सिंहराशि** सायं ५।८ बजेसे, **अमावस्या, पुरुषोत्तम मास समाप्त।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, शुद्ध श्रावण-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ४।५ बजेतक	गुरु	मघा रात्रिमें ७।४६ बजेतक	१७ अगस्त	**मूल** रात्रिमें ७।४६ बजेतक, **सिंह संक्रान्ति** रात्रिशेष ३।५७ बजे।
द्वितीया सायं ६।१ बजेतक	शुक्र	पू०फा० ,, १०।१६ बजेतक	१८ ,,	**कन्याराशि** रात्रिशेष ४।४९ बजेसे, **धर्मसम्राट स्वामी करपात्री-जयन्ती।**
तृतीया रात्रिमें ७।४३ बजेतक	शनि	उ०फा० ,, १२।३० बजेतक	१९ ,,	**हरियाली तीज।**
चतुर्थी ,, ९।३ बजेतक	रवि	हस्त ,, २।२२ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें ८।२४ बजेसे रात्रिमें ९।३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, ९।५४ बजेतक	सोम	चित्रा रात्रिमें ३।४७ बजेतक	२१ ,,	**तुलाराशि** दिनमें ३।४ बजेसे, **नागपंचमी, श्रावण सोमवारव्रत।**
षष्ठी ,, १०।१७ बजेतक	मंगल	स्वाती रात्रिशेष ४।४२ बजेतक	२२ ,,	× × × × ×
सप्तमी ,, १०।८ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ५।६ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।८ बजेसे, **गोस्वामी तुलसीदास-जयन्ती, वृश्चिकराशि** रात्रिमें ११।० बजेसे।
अष्टमी ,, ९।२८ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, ५।० बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।४८ बजेतक, **मूल** रात्रिशेष ५।० बजेसे।
नवमी ,, ८।२२ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा रात्रिमें ४।२९ बजेतक	२५ ,,	**धनुराशि** रात्रिशेष ४।२९ बजेसे।
दशमी ,, ६।५३ बजेतक	शनि	मूल ,, ३।३९ बजेतक	२६ ,,	**मूल** रात्रि ३।३९ बजेतक।
एकादशी सायं ५।२ बजेतक	रवि	पू०षा० ,, २।२६ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** प्रात: ५।५८ बजेसे सायं ५।२ बजेतक, **पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी दिनमें २।५६ बजेतक	सोम	उ०षा ,, १।१ बजेतक	२८ ,,	**मकरराशि** दिनमें ८।६ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत, श्रावण सोमवारव्रत।**
त्रयोदशी ,, १२।३८ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, ११।२६ बजेतक	२९ ,,	× × × × ×
चतुर्दशी ,, १०।१२ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ९।४५ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१२ बजेसे रात्रिमें ८।५८ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें १०।३६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें १०।३६ बजे, **भद्राके बाद 'रक्षाबन्धन।**
पूर्णिमा ,, ७।४५ बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, ८।६ बजेतक	३१ ,,	**पूर्णिमा।**

गो-चिन्तन—

गोहत्या—महापाप

प्राचीनकालमें गौके मारनेके बराबर कोई भी अपराध नहीं था। महापातकोंसे भी बढ़कर यह अपराध है। चक्रवर्ती राजा वैवस्वत मनुके पुत्र पृषध्रको वसिष्ठजीने अपनी गौओंकी रक्षाका काम दिया। सम्राट्का पुत्र लाखों गौओंके झुण्डकी धनुष-बाण लेकर तत्परतासे दिन-रात रक्षा करता रहता था। एक दिन वर्षा-ऋतु थी, अँधेरी रात्रि थी, गौओंके गोष्ठमें कोई व्याघ्र आ गया। गौएँ विदुकने लगीं। राजपुत्र समझ गया, व्याघ्र आ गया है। हाथमें खड्ग लेकर दौड़ा। व्याघ्र गौको लिये जा रहा था। राजपुत्रने सिंहपर प्रहार किया, उसका कान कट गया। गौको छोड़कर भागने लगा। दैवगतिसे अँधेरेमें भ्रमवश, भूलमें, जिस गौकी रक्षा वह प्राणपणसे कर रहा था, उसी गौके खड्ग लग गया। उसका सिर कट गया। राजपुत्र यह समझकर प्रसन्न हुआ, मैंने व्याघ्रको मार डाला। जब प्रकाशमें देखा तो पता लगा कि व्याघ्रके भ्रमसे गौ मारी गयी। डरते-डरते उसने गुरुदेवसे निवेदन किया। गुरुने उसे राजच्युत ही नहीं किया, क्षत्रियत्वसे गिराया ही नहीं, उसे वर्णाश्रम-धर्मसे बहिष्कृत कर दिया। आप सोचें—उस राजपुत्रका दोष क्या था? उसने तो गौकी रक्षाके ही लिये प्रयत्न किया था। यह ठीक है उसने जानकर पाप नहीं किया। किंतु जानकर करे या अनजानमें, पाप तो पाप ही है। जानकर करनेसे वह घोर हो जाता है, अनजानमें करनेसे कुछ कम। फिर भी दोष तो है ही, हत्या तो लगती ही है।

यह तो बहुत पुरानी बात है। मैंने अपने बाल्यकालमें ये दृश्य देखे हैं। अब तो वे देखनेमें नहीं आते। जब उन दृश्योंको याद करता हूँ तो अब भी मेरी आँखोंमें आँसू भर आते हैं। कभी किसीसे भूलमें गौकी बछिया मर जाती तो गाँवके पंच मिलकर उसे सजा देते। 'सौ गाँव या हजार गाँवोंमें भीख माँगते हुए गंगास्नान करो।' घरवाले उसे घरसे बाहर कर देते। यह अपने मुँहको ढक लेता। जो बछिया उसके हाथों मरती, उसकी पूँछ लाठीमें बाँध लेता। एक फूटा बर्तन साथ लेता। वह न तो गाँवमें घुसता, न कभी किसीको अपना मुँह दिखाता था। गाँवके बाहर वह बड़े जोरसे करुणाके स्वरमें पुकारता था—गाँवके बाहर कलंकी ठाढ़ो है····कोई भीख दे जाओ···· हमलोग छोटे-छोटे बच्चे सारा काम छोड़कर उसके पास जाते। वह मुँह नहीं दिखाता था। हमलोग दूरसे उसके पात्रमें जल डाल देते, उसे आटा देते। हृदयमें उसके प्रति कैसी करुणा उत्पन्न होती। उससे पूछते—'भैया! तुम्हें हत्या कैसे लगी?' वह बताता 'इस तरह मैं खेतपर गया। बछिया थी, उसे भगाया, गिर पड़ी, चार दिनोंमें मर गयी।' अब आप इसीसे अनुमान कीजिये, गौका हमारे समाजमें कितना महत्त्व था।

मैं व्रजमण्डलकी ८४ कोशकी यात्रामें गया। भरतपुर राज्यमें आदिबद्रीके पास खान ठाकुरोंके सैकड़ों गाँव हैं। वे मुसलमान कहाते हैं। उन्होंने बताया कि हमारे पूर्वज धौलपुर राणाके खानदानके बड़े भारी सरदार थे। उनके दो पुत्र थे। एक पुत्रसे भूलमें गौ मर गयी। वह घरकी गौ नहीं, 'बनगाय' थी। (वास्तवमें 'वनगौ' हिरनकी जाति है।) इसपर पंचायतने उन्हें ४०० गाँवोंमें भीख माँगकर गंगास्नानका दण्ड दिया। वह बड़ा मानी था, फिर भी वह मुँह ढक गाँव-गाँव चिल्लाता फिर रहा था। एक मुसलमान मौलवीने उसे फुसलाया कि तुम्हारा धर्म कैसा है, तुम मुसलमान हो जाओ। इतने पराक्रमी होकर तुम ऐसे क्यों मारे-मारे घूम रहे हो? उसकी समझमें बात आ गयी और वह मुसलमान हो गया। उसका परिवार भी उसके साथ ही रहा। अब भी उनके रीति-रिवाज हिन्दुओंके-से हैं। पण्डित-पुरोहित विवाहोंमें आते हैं।

कहनेका अभिप्राय इतना ही है कि गौका हिन्दूसमाजमें इतना गौरव था। गौके लिये प्राण देनेवाला स्वर्ग जाता था। परंतु आज विडम्बना यह है कि हम हिन्दू कहलानेवाले उन जीते हुए मूक पूज्य प्राणियोंको तराजूमें तोलकर दे देते हैं। हमारे पतनकी यह चरम सीमा है। [श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी]

सुभाषित-त्रिवेणी

इन्द्रियोंके नियन्त्रणसे लाभ

[Advantages of control over the senses]

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥

इन्द्रियों तथा मनको जीतनेवाले, अपराधियोंको दण्ड देनेवाले और जाँच-परखकर काम करनेवाले धीर पुरुषकी लक्ष्मी अत्यन्त सेवा करती हैं।

A sober king who has conquered his senses and his wayward mind, who awards punishment to the guilty and undertakes a task only after weighing the pros and cons, has Lakshmi always at his beck and call.

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्
नात्मा नियतेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै-
र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥

राजन्! मनुष्यका शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इन्द्रियाँ इसके घोड़े हैं। इनको वशमें करके सावधान रहनेवाला चतुर एवं धीर पुरुष काबूमें किये हुए घोड़ोंसे रथीकी भाँति सुखपूर्वक यात्रा करता है।

Rajan! The Human body is like a chariot of which the soul is the charioteer. The sensory perceptions are the horses geared to pull this chariot. An ever-alert man who has reigned them, who is dexterous, clever and in control of himself, travels on this chariot of life in joy and peace.

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्॥

शिक्षा न पाये हुए तथा काबूमें न आनेवाले घोड़े जैसे मूर्ख सारथिको मार्गमें मार गिराते हैं, वैसे ही ये इन्द्रियाँ वशमें न रहनेपर पुरुषको मार डालनेमें भी समर्थ होती हैं।

The senses when not reined are powerful enough to destroy a man just as untamed and un-controllable horses throw off the foolish charioteer.

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्॥

इन्द्रियाँ वशमें न होनेके कारण अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझकर अज्ञानी पुरुष बहुत बड़े दुःखको भी सुख मान बैठता है।

An ignorant man, unable to control his senses, takes the real for the unreal and accepts the apparent for what might be worthless. Such a man [having lost his sense of discrimination] rejoices even when he is in fact deep in sorrow.

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥

जो धर्म और अर्थका परित्याग करके इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है, वह शीघ्र ही ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्रीसे ही हाथ धो बैठता है।

Ignoring Dharma and Artha, such a person becomes a slave to his senses. Soon he gets deprived of his prosperity, his woman, his wealth, and even his life

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद् भ्रश्यते हि सः॥

जो अधिक धनका स्वामी होकर भी इन्द्रियोंपर अधिकार नहीं रखता, वह इन्द्रियोंको वशमें न रखनेके कारण ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाता है।

He may be wealthy but if he has not overpowered his senses, his wealth gets destroyed because of his lack of control over senses.

[विदुरनीति २।५८—६३]

कृपानुभूति

हनुमान्‌जीकी कृपा

घटना आजसे लगभग बीस-बाईस वर्ष पहलेकी जोरहाट (असम) शहरकी है। हमलोग दूकानमें थे तथा घरमें औरतें अकेली थीं। दो ठग अपनेको हरिद्वारके पण्डे बताकर घरमें घुस गये। उन्होंने अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंसे स्त्रियोंको अपनी ओर आकर्षितकर तथा अभी घरके दिनमान खराब चल रहे हैं आदि बातोंमें बहकाकर उनसे करीब ४०० रुपये ठग लिये। इस बीच अचानक किसी कामसे मेरा घरपर आना हुआ, तो मैंने दो अपरिचितोंको वहाँ देखा। माताजीसे पूछनेपर उन्होंने बताया कि ये हरिद्वारके पण्डे हैं। इसी लिहाजसे मुझे भी उनके पास बैठना पड़ा। वे अपनी शैलीमें रामायणकी कुछ चौपाइयाँ कहकर प्रवचन देने लगे। मैंने जब उनके आनेका अभिप्राय पूछा तो उन्होंने कहा—हमारे यहाँ कनखलमें हनुमान्‌जीका एक बड़ा यज्ञ हो रहा है, जिसमें हमें असली घीके १५ किलोके दो डिब्बोंकी जरूरत है। आपकी ओरसे यह हो जाय तो अतिश्रेष्ठ होगा। मेरी इच्छा तो कम थी, लेकिन माताजीके आग्रहके कारण दो पीपे देनेकी असमर्थता जतायी तथा एक पीपेकी कीमत ३२५ रुपये उनको दे दिये। वे लोग रुपये लेकर घरसे खिसक गये। उनके जानेके बाद माताजीने कहा कि हमसे भी ४०० रुपये लिये हैं। यह सुनते ही मुझे समझनेमें देर नहीं लगी कि दोनों ठग थे। इसके बाद मैंने तथा मेरे भाइयोंने उनको काफी ढूँढ़ा, लेकिन उनका कहीं पता नहीं लगा।

मेरे घरके पास ही हनुमान्‌जीका एक मन्दिर है। वहाँ शामको मन्दिरमें सात-से-साढ़े सात बजेतक रोज कीर्तन होता था तथा उसमें मैं भी नियमित जाता था। कीर्तन खत्म होनेके बाद हम सभी भगवान्‌के विग्रहोंको साष्टांग प्रणामकर घर चले आते थे। उस दिन भी खिन्न मनसे हनुमान्‌जीके विग्रहके आगे हाथ जोड़कर बड़े ही शान्त भावसे मैंने कहा—प्रभो, यह तो आपके नामसे ठगाई हुई और यदि ऐसा ही होता रहा, तो लोगोंका आपसे विश्वास उठ जायगा। इस प्रकार प्रार्थनाकर मैं घर आकर सो गया। यह जानकर मैं आज भी रोमांचित हो जाता हूँ कि मुझे किसीने पाँच बजे जगाया। मैं उनींदा-सा किसीकी प्रेरणासे चप्पल पहना और बाहर सड़कपर आ गया। सड़क सीधी दोनों बसअड्डोंको जाती है। पहले बसअड्डेपर जाकर मैंने इधर-उधर दृष्टि दौड़ायी और फिर चलने लगा। मैं बड़े बसअड्डेकी ओर बढ़ रहा था। बसअड्डेसे सटकर ही एक गली थी। मैं जैसे ही वहाँ पहुँचा, वे दोनों ठग जिनकी वेश-भूषा बिलकुल अलग थी, मेरे सामनेसे निकले। जैसे ही उन्होंने सामान नीचे रखा, मैं जाकर उनके सामने खड़ा हो गया। मुझे देखकर वे दोनों सकपका गये और मेरे पैरोंपर गिर पड़े।

अपनी जेबसे एक पैकेट मुझे देते हुए कहा—'यह लीजिये आपके ७२५ रुपये। हमें कल रातको ही पता चल गया था कि यह रुपये हमारे हजम होनेवाले नहीं। गिन लीजिये। हम अपने कियेपर बहुत शर्मिन्दा हैं। आप हमें माफ कर दीजिये।'

मैं खुद भी अचम्भित था कि इतने बड़े शहरमें उन्हें ढूँढ़ पाना, सहज ही उनका समर्पण, उनको रातमें ही रुपये हजम न होनेकी बात मालूम पड़ना और पहलेसे ही रुपये अलग रखना—यह सब मेरे लिये अलौकिक घटना थी। यह बाबाकी अहैतुकी कृपाका चमत्कार था। मैं सीधा मन्दिर जाकर बाबाके आगे साष्टांग प्रणामकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। यह सोचकर मेरी आँखोंसे कृतज्ञताके आँसू बह रहे थे कि प्रभुने मेरी न सिर्फ शिकायत सुन ली, बल्कि सम्यक् समाधान भी कर दिया। धन्य है उनकी कृपा! [श्रीश्यामजी गगड़]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

गोसेवा एवं बड़ोंका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता

मैं एक सेवानिवृत्त बैंक अधिकारी हूँ और हरिद्वारमें निवास करता हूँ। मेरा मूल निवास जिला शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेशका एक छोटा-सा गाँव है। ग्रामीण परिवेशमें पलनेके कारण मेरा विवाह जब मैं उन्नीस वर्षका था तथा अभी बी०कॉम० फाइनलकी परीक्षा दी ही थी कि दिनांक ३ जून १९६९ को कर दिया गया। माता-पिताके सम्मुख मना करनेकी मेरी क्षमता ही न थी। यद्यपि विवाहसे मेरी पढ़ाईमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई और मैंने एम०कॉम० भी उसी प्रकार पास किया तथा सदैवकी तरह ही अपने कॉलेज (बरेली कॉलेज, बरेली)-में प्रथम स्थान प्राप्त किया। अच्छा शैक्षणिक स्तर और भगवत्कृपाके कारण मुझे नौकरीके लिये प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी और पहले फूड कॉरपोरेशन ऑफ इण्डिया तथा बादमें बैंक ऑफ बड़ौदामें मेरा चयन हो गया। वही मेरे जीवनका आधार बन गया। विवाहोपरान्त लगभग नौ वर्षतक सन्तान न होनेके कारण परिवारको इसकी चिन्ता होने लगी। इस कारण हम दोनों पति-पत्नीने कानपुरके हैलेट अस्पतालमें दिसम्बर १९७८ में अपने-अपने परीक्षण कराये, तो डॉक्टरने मुझे अलग ले जाकर बताया कि आपकी पत्नीके साथ विशेष समस्या है, जिससे सन्तान नहीं हो सकती। मैंने इसको पत्नीसे गोपनीय रखा तथा ईश्वरेच्छा समझ लिया।

समय बीतता गया, दिनांक २५ अक्टूबर १९८३ को जब मैं बैंककी एक ग्रामीण शाखा कुरिया कलामें शाखा प्रबन्धकके पदपर कार्य कर रहा था, तभी शाखाके भवनस्वामीकी सलाहपर मैंने गोसेवाहेतु एक गाय खरीदी तथा अच्छी तरह बैंकसेवाके साथ-साथ गोसेवा भी करता रहा; क्योंकि कहा जाता है कि गोसेवाका फल अवश्य मिलता है। तदनन्तर दिनांक २८ जनवरी १९८४ को गायने एक बहुत ही सुन्दर श्वेतवर्ण बछड़ेको जन्म दिया, परंतु तुरन्त ही बीमार भी हो गयी। मैंने पशु-चिकित्सकसे सम्पर्क किया तो उन्होंने अविलम्ब अपने कम्पाउण्डरको भेज दिया, जिसने दो दिनतक उपचार किया, परंतु गोमाताके स्वास्थ्यमें सुधार नजर नहीं आया। ३० जनवरी १९८४ को प्रातः नौ बजे कम्पाउण्डर महोदय पुनः आ गये और उन्होंने गाय जो बिलकुल शान्त लेटी हुई थी, देखकर बताया कि इसका ठीक होना कठिन है। यह सुनकर मैं गायके सिरके पास बैठ गया और उसका सिर अपनी जाँघपर रखकर ऊँचे स्वरमें मैंने कहा 'माता, अब हम सबका मोह छोड़ दो' और उसके कानमें 'राम-राम' का उच्चारण किया, तो देखा कि गोमाताकी आँखकी पुतली एक चरखीकी भाँति बहुत तेज घूमी तथा गोमाताने बिना किसी कष्टके अपने प्राण त्याग दिये। मुझे रामचरितमानसका दोहा ***'राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग। सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥'*** याद आया और रामके नामका प्रभाव साक्षात् दिखायी दिया। कम्पाउण्डर, जो एक मुस्लिम था, विस्मित होकर कहने लगा, 'आजतक मैंने किसी जानवरको इस प्रकार प्राण त्यागते हुए नहीं देखा। यह कोई विशेष रूह थी, जिसने एक बार भी बिना पैर पटके प्राण त्याग दिये।' भवन-स्वामीकी सहायतासे मैंने गोमाताका शव विधिवत् कफन ओढ़ाकर गड्ढेमें एक बोरी नमकके साथ विसर्जित किया।

कुछ दिनतक तो मैं उसके ही शोकसे सन्तप्त रहा, फिर विधिका विधान मानकर धैर्य रखते हुए पुनः एक गाय क्रय की तथा जबतक मेरी पोस्टिंग ग्रामीण शाखाओंमें रही गोसेवा करता रहा।

कुछ समयोपरान्त फरवरी १९८८ में मैंने शाहजहाँपुर नगरमें एक मकान क्रय किया, जो एक वृद्ध विधवा महिलाका था, जिसके कोई सन्तान नहीं थी तथा उसके घरपर दो लोगोंने कब्जा कर रखा था। वे दोनों उस बेचारीको किराया भी नहीं देते थे तथा मकानको बिकने भी नहीं देते थे। जब वह मकान मैंने खरीद लिया तो वे वृद्ध महिला बहुत ही प्रसन्न हुईं और मुझसे बोलीं, 'बेटा! तुमने मुझे रोटी दे दी, मैं आजकल रोटीके लिये भी परेशान थी और यह दोनों दुष्ट न किराया देते थे और न ही मकान

बिकने देते थे। आप देखना आपके यहाँ एक लड़का आयेगा।' भगवत्कृपा हुई, उन दोनोंने कुछ समय तो लिया, पर उन्हें मकान खाली करना पड़ा। हमने १८ अगस्त १९८८ को गृह-प्रवेश किया तथा गोसेवा एवं उस वृद्ध महिलाके आशीर्वादसे मुझे दिनांक २६ जुलाई १९८९ को विवाहके बीस वर्षोपरान्त पत्थरपर दूब जमनेकी तरह एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई, जो मेरी एकमात्र सन्तान है।

इस प्रकार अपने जीवनमें मुझे गोसेवा तथा बड़ोंके आशीर्वादका फल साक्षात् दिखायी दिया।

[श्री आई० डी० त्रिवेदीजी]

(२)

भक्तिकी शक्ति

जबलपुरके पास कुसनेर नामक कस्बेमें मोहनसिंहका परिवार रहता था, जिसकी एकमात्र सन्तानका नाम रामलखन था और वह अपने नामके अनुरूप ही दिन-रात प्रभुकी भक्तिमें ही तल्लीन रहता था। एक दिन उसे अचानक मनमें विचार आया कि राष्ट्रकी सेवाहेतु उसे कुछ कर्म करना चाहिये ताकि देशहितमें उसका योगदान उसे आत्मसन्तुष्टि देकर उसके जीवनको सार्थक बना सके। उसे अचानक ही सेनामें जानेकी धुन सवार हो गयी और प्रभुकृपासे उसका चयन भी हो गया। उसकी प्रशिक्षण अवधि पूर्ण होनेके पश्चात् उसे सन् १९७१ ई०में भारत-पाकिस्तान-युद्धके दौरान सीमापर भेज दिया गया।

उसके वरिष्ठ अधिकारियोंको उसके धार्मिक स्वभावके विषयमें पता था और उन्हें उसके ऊपर विश्वास नहीं था कि वह दुश्मनोंसे मुकाबला कर पायेगा। उसे जब इस बातका पता हुआ तो उसने अपने कमाण्डरको कहा कि यह सच है कि मुझे प्रभुपर असीम विश्वास है। मैं भक्ति करते हुए प्रभुसे यह याचना भी करता हूँ कि मेरी गोली व्यर्थ न जाय। यदि मैं लड़ते हुए शहीद हो जाऊँ तो मेरी आत्माको मुक्ति मिल जाय, परंतु इसका मतलब यह मत निकालिये कि मैं लड़नेमें अयोग्य हूँ, मुझे एक मौका देकर देखिये, यदि मैं सफल न हो पाया तो आपको मुँह कभी नहीं दिखाऊँगा। उसकी बातोंसे प्रभावित होकर कमाण्डरने उसे सीमापर स्थित चौकीपर तैनात कर दिया।

एक रात अचानक ही पाकिस्तानकी फौजने उस सीमापर धावा बोल दिया, जहाँ रामलखन तैनात था। उसने तुरन्त ही बाकी सैनिकोंको अपने पीछे आनेका निर्देश दिया और स्वयं आगे रहकर दुश्मनोंसे मुकाबला करनेहेतु वीरतापूर्वक आगे बढ़ने लगा। उसके सधे हुए निशानेसे हर गोलीपर दुश्मनके एक सैनिककी मृत्यु होने लगी। दुश्मनकी गोलियाँ उसके आसपाससे निकल जाती थीं। यह आश्चर्यजनक बात थी कि इतने घमासान युद्धके बाद भी उसे और उसके सैनिकोंकी टुकड़ीको कोई भी गोली नहीं लगी और उसने सफलतापूर्वक पाकिस्तानी फौजको पीछेकी ओर धकेल दिया एवं उनके बहुत सारे सैनिक इस युद्धमें मारे गये।

रामलखनकी इस सफलतापर उसके कमाण्डरने प्रसन्न होकर पूछा कि रामलखन! ऐसा कैसे हुआ कि तुम पाकिस्तानके सैनिकोंके सामने बिना ओटमें छिपे सीधे गोली चलाते रहे और तुम्हें उनकी एक भी गोली हताहत नहीं कर पायी। उसने जवाब दिया कि मैं हर साँसमें प्रभुका स्मरण करता जा रहा था और साथ ही मेरी बन्दूक आग उगल रही थी। यह ईश्वरकी भक्तिका प्रताप है कि इतनी खतरनाक परिस्थितियोंमें भी मैं और मेरे सभी साथी जीवित बचकर दुश्मनको मारकर भगानेमें सफल रहे।

उसके कमाण्डरने कहा कि मैं तुम्हारी बातपर यकीन नहीं करता, यह तो महज एक इत्तेफाक ही रहा होगा कि तुम बच गये। उसने कहा कि यह अपने-अपने विचार हैं। मैं ईश्वरके प्रति कृतज्ञ हूँ और आगे इससे भी कठिन परिस्थितियोंको झेलनेके लिये तैयार हूँ। मेरे रोम-रोममें प्रभुकी भक्ति सदैव मेरी एवं मेरे साथियोंकी रक्षा करती रहेगी। **[श्रीराजेशजी माहेश्वरी]**

(३)

परहितमें ही अपना हित

वामासा गाँवसे गुजरते हुए दो सहयात्रियोंमेंसे एक चिल्लाकर सहसा पैर पकड़कर बैठ गया। असह्य वेदनासे वह तिलमिला रहा था; क्योंकि एक बड़ा नुकीला काँटा उसके पैरमें घुस गया। वह पैर भी उठा नहीं सकता था। उसका सहयात्री आगे बढ़ा। कुछ दूरीपर जाकर वहाँसे चिल्लाने लगा—'अबे, जल्दी उठ, दौड़कर यहाँ आ जा।

क्या तुझे इतना पता नहीं कि सूर्य अस्त हो चुका है? यदि तू दौड़कर न आया, तो हम समयपर अपने निश्चित स्थानपर नहीं पहुँच पायेंगे।'

पहले मनुष्यने कहा—'प्यारे दोस्त, तुम्हें पता नहीं कि मुझे कितनी पीड़ा हो रही है। जबतक यह काँटा निकल नहीं जाता, तबतक मैं एक कदम भी चल नहीं सकता।'

'इस तरह यात्रामें काहेको रुकावट डालते हो? उठके आना है तो चले आओ, नहीं तो मैं यह चला आगे। तू आरामसे बैठा रह।' ऐसा कहकर वह कुछ और आगे बढ़ा। अभी वह थोड़ी दूर गया था कि उसके पैरमें भी एक बड़ा ही नुकीला काँटा घुस गया और वह अति पीड़ासे आहत होकर नि:सहाय बैठ गया। हाथ लगाते ही दोनोंको इतना दर्द होता था कि अपने-आप कोई भी काँटा निकाल नहीं सकता था। परस्पर प्रेम और सहकार वृत्तिके अभावके कारण दूर बैठे हुए दोनों पारस्परिक संकट-कालमें एक-दूसरेके लिये अंशमात्र भी उपयोगी नहीं बन पाये। वहाँसे गुजरते हुए किसी अन्य यात्रीने यातनासे सन्त्रस्त उन दोनोंके कष्टका निवारण करते हुए कहा—'दोस्त, यदि तुमने पहले ही, जब उसके पैरमें काँटा लगा था, उसकी सहायता की होती, तो तुम्हारे संकटके समयपर वह भी तुम्हारे साथ होता और तुम्हारे उपयोगमें आ सकता। इस तरह पारस्परिक सहयोगसे तुम शीघ्र ही अपने नियत स्थानपर पहुँच पाते। एक-दूसरेके संकट-कालमें इस तरहसे टालनेका फल यही होता है।'

अरे भाई, दूसरे मनुष्यके संकटकी बेलासे आपको सेवाका सुअवसर प्राप्त होता है। सहयोग और सेवा-भावसे आपका अप्रत्याशित उत्थान होगा और आप अपने लक्ष्यको प्राप्त कर लेंगे। आप दूसरोंकी दुखी दशाको 'अपना प्रारब्ध भुगत रहा है' ऐसा कहेंगे तो आपका भी यही हाल, होगा आप इसी तरह नि:सहाय और अत्यन्त दु:खकी स्थितिमें बड़ी बुरी तरहसे फँस जायँगे। संसारका स्वभाव जानो और सेवा करो, प्रेम करो और ***'जित देखूँ तित वृंदा श्यामा'*** की अनुभववाहिनीमें अमृत-स्नान करो। **[स्वामी श्रीशिवानन्दजी]**

(४)

डॉ० राजेन्द्रप्रसादकी सादगी

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद हमारे देशके प्रथम राष्ट्रपति थे। विश्वके सबसे बड़े प्रजातान्त्रिक देशके सर्वोच्च पदपर आसीन होते हुए भी उनमें अहंकारका लेशमात्र भी नहीं था। ***'सादा जीवन-उच्च विचार'*** उनका जीवन-सिद्धान्त था।

सन् १९६० ई० में गणतन्त्रदिवसके अवसरपर ब्रिटेनकी महारानी एलिजाबेथका आगमन हुआ। राष्ट्रपतिके नाते डॉ० राजेन्द्रप्रसादने पालम हवाई अड्डेपर उनकी अगवानी की। महारानी एलिजाबेथ अपने विशेष राजशाही विमानसे उतरकर जैसे ही डॉ० राजेन्द्रप्रसादसे मिलीं, वे उनकी वेशभूषाको देखकर आश्चर्यचकित रह गयीं; क्योंकि डॉ० राजेन्द्रप्रसादकी वेश-भूषा हाथके कते सूतसे बनी थी। डॉ० राजेन्द्रप्रसादने महारानीसे हाथ नहीं मिलाया, अपितु भारतीय परम्पराके अनुरूप हाथ जोड़कर अभिवादन किया।

महारानी भारतकी विशेष मेहमान थीं और वे राष्ट्रपति-भवनके अत्यन्त सुन्दर और विशिष्ट कक्षमें ठहरी हुई थीं। जनवरी माहकी गुलाबी ठण्ड थी। एक दिन महारानीने प्रात:काल अपनी खिड़कीसे देखा कि मुगल गार्डनमें एक व्यक्ति कम्बल ओढ़े और नंगे-पैर भ्रमण कर रहा है। महारानीने अपने सुरक्षाकर्मीसे उस व्यक्तिका परिचय जानना चाहा। सुरक्षाकर्मीने कहा कि ये डॉ० राजेन्द्रप्रसाद हैं, जो अपने दैनिक कार्यक्रमके अन्तर्गत प्रात:कालमें भ्रमण करते हैं।

महारानी ऐलिजाबेथकी इस महान् हस्तीके विषयमें गहन रुचि हो गयी थी और इसीलिये वे डॉ० राजेन्द्रप्रसादके साथ काफी निजी समय व्यतीत करनेको तत्पर थीं। उन्होंने डॉ० राजेन्द्रप्रसादसे चर्खा चलानेकी प्रक्रिया भी सीखी।

अपनी भारत-यात्रा पूरी करके जब महारानी ऐलिजाबेथ वापस ब्रिटेन जा रही थीं तो डॉ० राजेन्द्रप्रसादने महारानीको अपने हाथसे काते सूतकी एक साड़ी भेंट की, जो महारानी ऐलिजाबेथके निजी संग्रहालयमें आज भी सुरक्षित है।

ऐसे थे हमारे प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद!

[श्रीकृष्णमोहनजी गोयल]

मनन करने योग्य

धैर्यसे पुनः सुखकी प्राप्ति

एक बार युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे कहा—

'पितामह! क्या आपने कोई ऐसा पुरुष देखा या सुना है, जो एक बार मरकर पुनः जी उठा हो?'

भीष्मने कहा—राजन्! पूर्वकालमें नैमिषारण्यमें एक अद्भुत घटना हुई थी, उसे सुनो। एक बार एक ब्राह्मणका एकमात्र बालक अल्पावस्थामें ही चल बसा। रोते-बिलखते उसे लेकर सभी श्मशानमें पहुँचे और उसे भूमिपर रखकर करुण-क्रन्दन करने लगे। उनके रोनेका शब्द सुनकर वहाँ एक गीध आया और कहने लगा—'अब तुमलोग इस बालकको छोड़कर तुरंत घर चले जाओ। व्यर्थ विलाप मत करो। सभीको अपनी आयु समाप्त होनेपर कूच करना ही पड़ता है। यह श्मशान-भूमि गृध्र और गीदड़ोंसे भरी है। इसमें सर्वत्र नरकंकाल दिखलायी पड़ रहे हैं। तुमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। प्राणियोंकी गति ऐसी ही है कि एक बार कालके गालमें जानेपर कोई जीव नहीं लौटता। देखो, अब सूर्यभगवान् अस्ताचलके अंचलमें पहुँच चुके हैं, इसलिये इस बालकका मोह छोड़कर तुम अपने घर लौट जाओ।'

उस गृध्रकी बातें सुनकर वे लोग उस बालकको पृथ्वीपर रखकर रोते-बिलखते चलने लगे। इतनेमें ही एक काले रंगका गीदड़ अपनी माँदमेंसे निकला और वहाँ आकर कहने लगा—'मनुष्यो! वास्तवमें तुम बड़े स्नेहशून्य हो। अरे मूर्खो! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ। इतने डरते क्यों हो? कुछ तो स्नेह निबाहो। किसी शुभ घड़ीके प्रभावसे यह बालक कहीं जी ही उठे। तुम कैसे निर्दयी हो। तुमने पुत्रस्नेहको तिलांजलि दे दी है और इस नन्हे-से बालकको भीषण श्मशानमें यों ही पृथ्वीपर सुलाकर छोड़कर जानेको तैयार हो गये हो! देखो, पशु-पक्षियोंको भी अपने बच्चोंपर इतना कम स्नेह नहीं होता। यद्यपि उनका पालन-पोषण करनेपर उन्हें इस लोक या परलोकमें कोई फल नहीं मिलता।'

गीदड़की बातें सुनकर वे लोग शवके पास लौट आये। अब वह गृध्र कहने लगा—'अरे बुद्धिहीन मनुष्यो! इस तुच्छ मन्दमति गीदड़की बातोंमें आकर तुम लौट कैसे आये। मुझे जन्म लिये आज एक हजार वर्षसे अधिक हो गया; किंतु मैंने कभी किसी पुरुष, स्त्री या नपुंसकको मरनेके बाद यहाँ जीवित होते नहीं देखा। देखो, इसका मृत-देह निस्तेज और काष्ठके समान निश्चेष्ट हो गया है। अब तुम्हारा स्नेह और श्रम तो व्यर्थ ही है। इससे कोई फल हाथ लगनेवाला नहीं। मैं तुमसे अवश्य कुछ कठोर बातें कर रहा हूँ; पर ये हेतुजनित हैं और मोक्षधर्मसे सम्बद्ध हैं। इसलिये मेरी बात मानकर तुम घर चले जाओ। किसी मरे हुए सम्बन्धीको देखनेपर और उसके कामोंको याद करनेपर तो मनुष्यका शोक दुगुना हो जाता है।'

गृध्रकी बातें सुनकर पुनः सब वहाँसे चलने लगे। उसी समय गीदड़ तुरंत उनके पास आया और बोला—'भैया! देखो तो सही, इस बालकका रंग सोनेके समान चमक रहा है। एक दिन यह अपने पितरोंको पिण्ड देगा। तुम गृध्रकी बातोंमें आकर इसे क्यों छोड़े जाते हो? इसे छोड़कर जानेमें तुम्हारे स्नेह, व्यथा और रोने-धोनेमें तो कोई कमी आयेगी नहीं। हाँ, तुम्हारा संताप

अवश्य बढ़ जायगा। सुनते हैं एक बार राजर्षि श्वेतका बालक भी मर गया था, किंतु धर्मनिष्ठ श्वेतने उसे पुनः जीवित कर लिया था। इसी प्रकार यहाँ भी कोई सिद्ध मुनि या देवता आ गये तो वे रोते देखकर तुम्हारे ऊपर कृपा करके इसे पुनः जिला सकते हैं।'

गीदड़के इस प्रकार कहनेपर वे सब लोग फिर श्मशानमें लौट आये और उस बालकका सिर गोदमें रखकर रोने लगे। अब वह गृध्र उनके पास आया और कहने लगा—'अरे लोगो! यह तो धर्मराजकी आज्ञासे सदाके लिये सो गया है। जो बड़े तपस्वी, धर्मात्मा और बुद्धिमान् होते हैं, उन्हें भी मृत्युके हाथमें पड़ना पड़ता है। अतः बार-बार लौटकर शोकका बोझा सिरपर लादनेसे कोई लाभ नहीं है। जो व्यक्ति एक बार जिस देहसे नाता तोड़ लेता है, वह पुनः उस शरीरमें नहीं आ सकता। अब यदि इसके लिये एक नहीं, सैकड़ों गीदड़ अपने शरीरका बलिदान भी कर दें तो भी यह बालक नहीं जी सकता। तुम्हारे आँसू बहाने, लम्बे-लम्बे श्वास लेने या गला फाड़कर रोनेसे इसे पुनर्जीवन नहीं मिल सकता।'

गृध्रके ऐसा कहनेपर वे लोग फिर घरकी ओर चल पड़े। इसी समय गीदड़ फिर बोल उठा—'अरे! तुम्हें धिक्कार है। तुम इस गृध्रकी बातोंमें आकर मूर्खोंकी तरह पुत्रस्नेहको तिलांजलि देकर कैसे जा रहे हो। यह गृध्र तो महापापी है। मैं सच कहता हूँ, मुझे अपने मनसे तो यह बालक जीवित ही जान पड़ता है। देखो, तुम्हारी सुखकी घड़ी समीप है। निश्चय रखो, तुम्हें अवश्य सुख मिलेगा।'

इस प्रकार गृध्र और गीदड़ दोनों उन्हें बार-बार अपनी-अपनी कहकर समझाते थे।

राजन्! वे गृध्र और गीदड़ दोनों ही भूखे थे। वे दोनों ही अपना-अपना काम बनानेपर तुले हुए थे। गृध्रको भय था कि रात हो जानेपर मुझे घोंसलेमें जाना पड़ेगा और इसका मांस सियार खायेगा। इधर गीदड़ सोचता कि दिनमें गृध्र बाधक होगा या इसे लेकर उड़ जायगा। इसलिये गृध्र तो यह कहता था कि अब सूर्यास्त हो गया और गीदड़ कहता था कि अभी अस्त नहीं हुआ। दोनों ही ज्ञानकी बातें बनानेमें कुशल थे। इसलिये उनकी बातोंमें आकर वे कभी घरकी ओर चलते और कभी रुक जाते। धूर्त गृध्र और गीदड़ने अपना काम बनानेके लिये उन्हें चक्करमें डाल रखा था और वे शोकवश रोते हुए वहीं खड़े रहे। इतनेमें ही श्रीपार्वतीजीकी

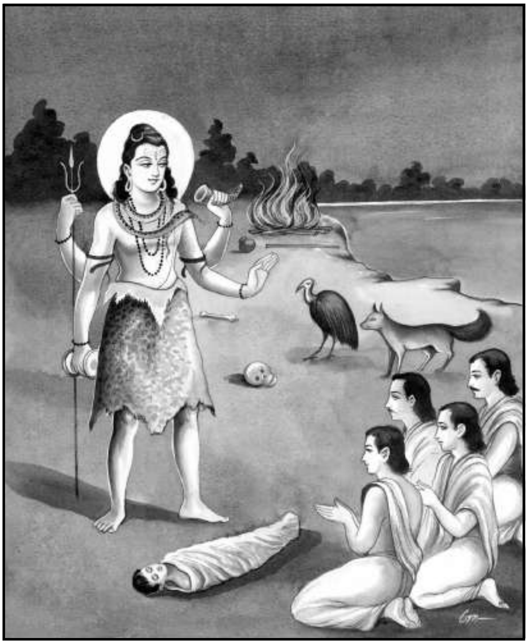

प्रेरणासे वहाँ भगवान् शंकर प्रकट हुए। उन्होंने उनसे वर माँगनेको कहा। तब सभी लोग अत्यन्त विनीत भावसे दुःखित होकर बोले—'भगवन्! इस एकमात्र पुत्रके वियोगसे हम बड़े दुखी हैं, अतः आप इसे पुनः जीवनदान देकर हमें मरनेसे बचाइये।'

उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्ने उस बालकको पुनः जिला दिया और उसे सौ वर्षकी आयु दी। भगवान्ने कृपाकर उस गीदड़ तथा गृध्रको भूख मिट जानेका वर दिया। वर पाकर सभीने पुनः-पुनः प्रभुको प्रणाम किया और कृतकृत्य होकर नगरकी ओर चले गये।

राजन्! यदि कोई दृढ़निश्चयी व्यक्ति धैर्यपूर्वक किसी कार्यके पीछे लगा रहे, उससे ऊबे नहीं, तो भगवत्कृपासे उसे सफलता मिल सकती है।

[महाभारत, शान्तिपर्व, अ०१५३]

कल्याणका आगामी ९८वें वर्ष (सन् २०२४ ई०)-का विशेषाङ्क

' संक्षिप्त आनन्दरामायणाङ्क '

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्। एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

शतकोटिप्रविस्तर रामायणोंकी परम्परामें आनन्दरामायणका विशिष्ट स्थान है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अन्य रामायणोंमें जहाँ भगवान् श्रीरामके आविर्भावसे लेकर उनके राज्यारोहणतककी लीलाकथाओंका ही प्राय: गुणगान हुआ है, वहीं इस रामायणमें इस पूरी कथाको 'सारकाण्ड' नामक एक काण्डमें समाहितकर अवशिष्ट आठ काण्डोंमें भगवान्की अन्य नवीन लीलाकथाओं तथा उनकी दिव्य गुणावलीका बड़े ही सुन्दर तथा रोचक ढंगसे वर्णन हुआ है। इसकी कथाएँ अत्यन्त नवीन, मनको आह्लादित करनेवाली तथा भक्तिको बढ़ानेवाली हैं। इसमें भगवान् श्रीरामकी ऐसी-ऐसी रोमांचक कथाएँ हैं, जिनका कहीं अन्यत्र वर्णन नहीं मिलता। इसमें महर्षि वेदव्यासका भगवान् श्रीरामके पास आना, उनके एकपत्नीव्रतकी प्रशंसा करना तथा उनके भावी कृष्णावतारका कथन, लव-कुशके जन्मके समय श्रीरामका विमानसे महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें सीताजीके पास जाना, भगवान् श्रीरामद्वारा भारतवर्षके सभी तीर्थोंकी यात्रा, अनेकानेक अश्वमेध यज्ञोंका सम्पादन, राम-लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा लव-कुश आदिकी वंश-परम्पराका वर्णन, भगवान् श्रीरामकी दिग्विजय-गाथा, अनूठा भूगोल-वर्णन आदि इस ग्रन्थकी अनमोल निधियाँ हैं। भगवान्की विविध स्तुतियाँ, मन्त्र, अनुष्ठान, अनेक प्रकारके रामलिंगतोभद्रोंकी रचना, रामाष्टोत्तरशतनाम, रामसहस्रनाम, रामस्तवराज, रामकवच, लक्ष्मणकवच, सीताकवच, शत्रुघ्न-भरतके कवच, हनुमत्कवच तथा रामनामकी महिमा इसमें विशेष रूपसे प्रतिपादित है। घर-घर पढ़ा जानेवाला श्रीरामरक्षास्तोत्र इसी ग्रन्थमें आया है। **'श्रीराम जय राम जय जय राम'** इस महामन्त्रको बतानेवाला श्लोक इस ग्रन्थमें कई बार आवृत्त हुआ है। आनन्दरामायणमें राजाधिराज प्रभु श्रीरामजीके ग्यारह हजार वर्षोंके राज्यकालकी अनुपम लीलाओंका चित्रण करते हुए राजनीति, धर्मनीति, लोकनीति, कूटनीति तथा साम-दान-दण्ड-भेद आदिसे सम्बद्ध अनेक महत्त्वपूर्ण प्रसंग यत्र-तत्र अनमोल रत्नोंकी भाँति जिस प्रकार सुशोभित हैं, वह अन्यत्र दुर्लभ है। आनन्दरामायणमें काव्य-सौन्दर्यकी दृष्टिसे कुछ शृंगारिक अंश और ऐसी बातें भी हैं, जो सामान्य पाठकोंको भ्रममें डाल सकती हैं। अत: उन गूढ़ अंशोंको हटाकर इसे संक्षिप्त किया गया है, शेष अधिकांश प्रसंगोंको यथावत् रखा गया है।

सम्पूर्ण आनन्दरामायण नौ काण्डोंमें विभक्त है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) सारकाण्ड, (२) यात्राकाण्ड, (३) यागकाण्ड, (४) विलासकाण्ड, (५) जन्मकाण्ड, (६) विवाहकाण्ड, (७) राज्यकाण्ड, (८) मनोहरकाण्ड तथा (९) पूर्णकाण्ड। काण्डोंके अन्तर्गत सर्ग हैं, सर्गोंके अन्तर्गत श्लोक हैं, पूरे आनन्दरामायणमें १०९ सर्ग और लगभग बारह हजार श्लोक हैं।

प्रभु श्रीरामको साक्षात् धर्मका विग्रह कहा गया है **'रामो विग्रहवान् धर्मः।'** मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके आदर्शोंको पाठक अपने जीवनमें सहजतासे उतार सकें, इसीलिये पूर्वमें गीताप्रेसद्वारा रामकथाविषयक वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, श्रीरामचरितमानस एवं योगवासिष्ठ इत्यादि विभिन्न ग्रन्थ और उनकी व्याख्याएँ प्रकाशित हो चुकी हैं, लेकिन आनन्दरामायणका प्रकाशन अभीतक नहीं हो सका था। अब इस महती कमीकी पूर्तिके लिये गीताप्रेसने आनन्दरामायणको कल्याणके आगामी ९८वें वर्ष (सन् २०२४)-के विशेषाङ्करूपमें प्रकाशित करनेका निर्णय लिया है।

इस विशेषाङ्कमें केवल आनन्दरामायणका भाषानुवाद ही दिया जायगा, अत: लेखक महानुभावोंसे सादर अनुरोध है कि वे इस विशेषाङ्कमें प्रकाशनार्थ लेख भेजनेका कष्ट न करें।

विनीत—

प्रेमप्रकाश लक्कड़

(सम्पादक)

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—व्रत-कथाओंकी पुस्तकें

व्रत-परिचय (कोड 610)—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मासमें पड़नेवाले व्रतोंके विस्तृत परिचयके साथ उन्हें सही ढंगसे सम्पादित करनेकी विधि दी गयी है। मूल्य ₹70

एकादशीव्रतका माहात्म्य (मोटा टाइप) कोड 1162—इस पुस्तकमें पद्मपुराणके आधारपर 26 एकादशियोंके माहात्म्य तथा विधिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹35

वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य (कोड 1136)—इस पुस्तकमें पद्मपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वर्णित इन तीनों महीनोंके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। मूल्य ₹50

श्रावणमास-माहात्म्य [सानुवाद] (कोड 1899)—इसमें सोमवार आदि प्रत्येक दिनके व्रतोंके सुन्दर विवेचनके साथ मंगलागौरी, स्वर्णगौरी, दूर्वागणपति, संकटनाशन, रक्षाबन्धन आदि व्रतोंका सुन्दर वर्णन है। मूल्य ₹50

श्रीसत्यनारायणव्रतकथा (कोड 1367)—इस पुस्तकमें भगवान् सत्यनारायणके पूजनविधिके साथ स्कन्दपुराणसे उद्धृत सत्यनारायणव्रतकथाको भावार्थसहित दिया गया है। मूल्य ₹20

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी-जयन्तीके अवसरपर पठनीय—तुलसी-साहित्य

[श्रीतुलसी-जयन्ती 23 अगस्त बुधवारको है]

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
105	विनय-पत्रिका—भावार्थसहित	60	108	कवितावली—भावार्थसहित	30	112	हनुमानबाहुक—भावार्थसहित	7
1701	विनय-पत्रिका, सजिल्द ”	80	109	रामाज्ञाप्रश्न— ”	20	113	पार्वती-मंगल— ”	7
106	गीतावली— ”	60	110	श्रीकृष्ण-गीतावली—”	15	114	वैराग्य-संदीपनी एवं	
107	दोहावली— ”	30	111	जानकी-मंगल— ”	10		बरवै रामायण— ”	7

श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

(श्रीकृष्णजन्माष्टमी 6 सितम्बर बुधवारको एवं श्रीराधाष्टमी 22 सितम्बर शुक्रवारको है।)

श्रीगर्गसंहिता-सटीक (कोड 2260) ग्रन्थाकार—श्रीकृष्णके कुलगुरु महर्षि गर्गद्वारा रचित श्रीराधाकी दिव्य माधुर्यभावमिश्रित लीलाओंका इसमें विशद वर्णन है। इसमें गोलोक, वृन्दावन, गिरिराज, माधुर्य, मथुरा, द्वारका, विश्वजित्, बलभद्र, विज्ञान एवं अश्वमेधसहित कुल 10 खण्ड हैं। श्रीकृष्णभक्तोंके लिये यह ग्रंथ संग्रहणीय है। इस ग्रन्थको मूल श्लोकोंके साथ प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹ 400

श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। राजसंस्करणमें अच्छे तथा मोटे कागजपर प्रकाशित यह पुस्तक साहित्यिक मनोभूमिको संस्कारित करनेवाली तथा श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये अनुपम रसायन है। मूल्य ₹ 200

श्रीकृष्णाङ्क (कोड 1184) ग्रन्थाकार—इस विशेषाङ्कमें भगवान् श्रीकृष्णके मधुर एवं ज्ञानपरक चरित्रपर अनेक सन्त-महात्मा, विद्वान् विचारकोंके शोधपूर्ण लेखोंका अद्भुत संग्रह किया गया है। मूल्य ₹250

गर्गसंहिता [सचित्र, सजिल्द] (कोड 517) ग्रन्थाकार—यह ग्रन्थ यदुकुलके महान् आचार्य महामुनि श्रीगर्गकी रचना है। इसमें श्रीमद्भागवतमें सूत्ररूपसे वर्णित श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंका विस्तृत वर्णन किया गया है। मूल्य ₹200

पदरत्नाकर (कोड 50) पुस्तकाकार—इन पदोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंके चित्रणके साथ ज्ञान, वैराग्य, चेतावनी आदि अनेक विषयोंपर सरल काव्यात्मक प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹150

श्रीराधा-माधव-चिन्तन (कोड 49) पुस्तकाकार—इसमें श्रीराधाकृष्णका अलौकिक प्रेम ही श्रीराधा-माधव-चिन्तनके रूपमें प्रस्फुटित है। भक्ति और शास्त्रीय चिन्तनके अद्भुत समन्वयके साथ यह ग्रन्थ-रत्न सात प्रकरणोंमें विभक्त है। मूल्य ₹ 150

प्र० ति० 20-06-2023

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

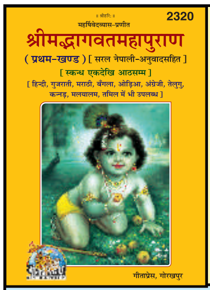

नवीन प्रकाशन—अब उपलब्ध

भागवतमहापुराण सटीक [नेपाली] (कोड 2320, 2321), ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें—कलिसंतरणका साधन-रूप यह सम्पूर्ण ग्रन्थ-रत्न मूलके साथ नेपाली-अनुवाद, पूजन-विधि, भागवत-माहात्म्य, आरती, पाठके विभिन्न प्रयोगोंके साथ दो खण्डोंमें प्रकाशित किया गया है। **मूल्य ₹800 सेट**

नवीन प्रकाशन—शीघ्र प्रकाश्य—

श्रीशिवमहापुराण-सटीक [नेपाली] (कोड 2325, 2326), ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें [सचित्र, मूल श्लोक नेपाली-अनुवादसहित]

पुरुषोत्तम मासमें स्वाध्याय योग्य ग्रन्थ

पुरुषोत्तम मास 18 जुलाई मंगलवारसे प्रारम्भ होगा

श्रीशिवमहापुराण-सटीक, दो खण्डोंमें [सचित्र, मूल श्लोक हिन्दी-अनुवादसहित] (कोड 2223, 2224) ग्रन्थाकार—श्रीशिवमहापुराणमें मुख्यरूपसे इसमें भगवान् शिवके लीलावतारोंकी कथाएँ, द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों-उपलिङ्गोंके आख्यान, शिवरात्रि, पाशुपत आदि व्रतोंकी कथाएँ, शिवभक्तोंके रोचक आख्यान, अर्धनारीश्वरस्तोत्र एवं पञ्चाक्षर मंत्र आदिका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। मूल्य ₹ 800 सेट। वि० सं० (**कोड 1468**) मूल्य ₹ 350, सामान्य संस्करण (**कोड 789**) मूल्य ₹ 330, गुजराती (**कोड 1286**) मूल्य ₹ 300, तेलुगु (**कोड 975**) मूल्य ₹ 260, बँगला (**कोड 1937**) मूल्य ₹ 230, कन्नड़ (**कोड 1926**) मूल्य ₹ 260, तमिल (**कोड 2043**) मूल्य ₹ 400 ओड़िआ (**कोड 2066**) मूल्य ₹ 300

चित्रमय संक्षिप्त शिवपुराण [चार रंगोंमें आर्ट पेपर पर] (कोड 2318) मूल्य ₹ 1500

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
2223	श्रीशिवमहापुराण-सटीक	800
2224	(दो खण्डोंमें सेट)	सेट
2020	शिवमहापुराण-मूलमात्रम्	350
1985	लिङ्गमहापुराण-सटीक	300
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	50
1899	श्रावणमास-माहात्म्य ,,	50
1954	शिव-स्मरण	15
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	80

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
0204	ॐ नमः शिवाय चित्रकथा	35
1343	हर हर महादेव ,,	35
1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	20
0563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	8
0228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	5
1185	शिवचालीसा-लघु आकार	3
1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	15

कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹
0230	अमोघ शिवकवच	5
1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	45
2155	द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग	50
2127	शिव-आराधना—पॉकेट साइज (बेड़िआ)	10
2261	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्र हिन्दी अनुवादसहित	10
2021	पुरुषोत्तमसहस्रनामस्तोत्रम् (नामावलिसहितम्)	10

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये—

www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)